जुलाई-सितंबर २००२

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

जयवंती डिमरी

कृष्ण सुकुमार

पुष्कर द्विवेदी

डॉ. सतीश दुबे

अमर स्नेह

आमने – सामने

रमेश कपूर

●

खुला – मंच

आलोक भट्टाचार्य

१५ रुपये

BEST WISHES

Velcord Textiles Pvt. Ltd.

Plot No. 23, Mira Coop. Indl. Estate,
Outside Dahisar Octroi Post,
Mira, Dist. Thane-401 104

कथाबिंब

जुलाई-सितंबर २००२
(१९७९ से प्रकाशित)

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
देवमणि पांडेय
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

● सदस्यता शुल्क ●
आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु.
वार्षिक : ५० रु.
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
विदेश में (समुद्री डाक से)
वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमान्ड ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर द्वारा केवल 'कथाबिंब' के नाम ही भेजें.

● संपर्क ●
ए-१० 'बसेरा,'
ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८
फोन : २५५१ ५५४१ व २५५५ ६८२२
टेलीफैक्स : २५५५ २३४८
e-mail: kathabimb@yahoo.com

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
१५ रु. के डाक टिकट भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

|| ५ || दूसरा नरककुंड / जयवंती डिमरी
|| ९ || खून / कृष्ण सुकुमार
|| १२ || कल का मोर्चा / पुष्कर द्विवेदी
|| १६ || लखमी संग सत्तरह घंटे / डॉ. सतीश दुबे
|| २३ || पहला पत्थर / अमर स्नेह

लघुकथाएं

|| २० || चमत्कार / मदन मोहन 'उपेंद्र'
|| ३२ || निर्णय / यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'
|| ३२ || संस्कार / विजय बजाज
|| ३३ || नयी परिभाषा / डॉ. योगेंद्रनाथ शुक्ल
|| ४४ || सेकंड हैंड / सलीम अख़्तर

ग़ज़लें / कविताएं / गीत

|| ८ || 'क्योंकि इंसा मेरे शहर का' / मनीषकुमार मिश्र
|| ३० || रोशनी का अहसास, एक परिचय / भोला पंडित 'प्रणयी'
|| ३० || ग़ज़लें / राजेंद्र वर्मा
|| ३१ || दो गीत / रासबिहारी पांडेय
|| ३१ || दो ग़ज़लें / म. ना. नरहरि
|| ३२ || दो नवगीत / वेद हिमांशु
|| ३३ || ग़ज़ल / सतीश गुप्ता
|| ३३ || दोहे / वृंदावन राय 'सरल'
|| ३७ || दो ग़ज़लें / आनंद शर्मा
|| ४० || दो ग़ज़लें / आभा पूर्वे

स्तंभ

|| २ || लेटरबॉक्स
|| ४ || 'कुछ कही, कुछ अनकही'
|| ३४ || आमने-सामने / रमेश कपूर
|| ४२ || खुला मंच / आलोक भट्टाचार्य
|| ४५ || पुस्तक-समीक्षाएं

लेटर बॉक्स

'कथाबिंब' का अप्रैल-जून ०२ अंक मिला. संतोष श्रीवास्तव की कहानी हृदयस्पर्शी ज़रूर है, किंतु अनूप की शारीरिक कष्टदायक ज़िंदगी, असह्य हालत देखकर उसके मम्मी-पापा द्वारा उच्च न्यायालय में 'दया-मृत्यु' का अधिकार मांगना कहां तक उचित है ? यह सोच का और बहस का विषय हो सकता है. कहानी अच्छी है. अन्य कहानियां भी पठनीय हैं. 'अकेले में घुलते होंगे पिताजी' बलराम अग्रवाल की लघुकथा में विधा के सभी तत्व मौजूद हैं. इसीलिए यह प्रभावित भी करती है. जबकि रमेश चंद्र पंडित की लघुकथा 'वसीयत' काफी कमज़ोर और त्रुटिपूर्ण भी है. एक तरफ पति कहता है -'चूंकि अपना तो कोई बेटा है नहीं'. अगली पंक्ति में ही उसकी पत्नी कहती है -'वह तो मेरे पोते के काम आयेगी ?' यह कैसे संभव है. ऐसी लघुकथाओं से परहेज़ करें तो अच्छा है.

ग़ज़लें सभी पठनीय हैं. 'पुस्तक-समीक्षा' स्तंभ संतुष्टि देता है. 'भाषा विचार' लेखकों और पाठकों के लिए उपयोगी है.

सुरेश शर्मा
२३५ क्लर्क कॉलोनी, इंदौर-४५२०११

'कथाबिंब' अप्रैल-जून ०२ मिला. आभारी हूं. इतने अच्छे और भरपूर अंक के लिए बधाई. रचनाओं का चयन काफी अच्छा है. कहानियां अपना प्रभाव छोड़ने में सफल हैं. 'एक चिट्ठी अहमदाबाद से' काफी मार्मिक है और गुजरात की त्रासदी की दास्तान निहायत संक्षेप में पूरी कामयाबी से कहने में सफल है. 'दूसरा चेहरा' अपने कन्टेन्ट के नाते काफी महत्वपूर्ण लगी. ६ दिसंबर के बाद मुसलमान अल्पसंख्यकों की मनोदशा कितनी असुरक्षित, कुंठित और असहाय हो गयी है, इस तरफ़ ध्यान कम ही गया है. दंगे-फसाद और हिंदू-मुस्लिम इत्तहाद पर काफी कहानियां लिखी गयी हैं, लेकिन बाबरी मस्जिद के विध्वंस के बाद मुस्लिम मनोवृत्ति में आने वाले परिवर्तन को गहराई से समझने का प्रयास नहीं हुआ. ख़ासकर इस वज़ह से यह कहानी महत्वपूर्ण हो जाती है.

कहानी लिखते समय कथाकार से थोड़ी भूल ज़रूर हुई है, जैसे 'टेलीफोन नंबरों का आदान-प्रदान करने के बाद हाथ हिलाकर मैंने शेरली को स्टेशन के लिए रवाना किया'. फिर दूसरा पैरा मुलाहज़ा हो, जब वह टहलते हुए कुछ देर बाद स्टेशन पहुंचते हैं, घूम फिर कर निकलते हैं तो शेरली को समोसे की दूकान पर समोसा खाता हुआ पाते हैं. उनके घर से वह घड़ी देखकर ट्रेन पकड़ने के लिए भागा था. वह ट्रेन छूट गयी अथवा लेट हो गयी, कुछ इसका ज़िक्र होता तो कहानी और विश्वसनीय होती.

कहानी में ६ दिसंबर का ज़िक्र आया है. किंतु शेरली में इतना बड़ा परिवर्तन कैसे आ गया ? इसकी ओर कुछ इशारा होता तो कहानी और अच्छी हो सकती थी. यह बात समझ में नहीं आती कि उसने अपने बहुत आत्मीय, हिंदू दोस्त के घर खाने से परहेज़ क्यों किया. बस इतना पता चलता है कि दाढ़ी बढ़ाकर, इस्लामी शक़्ल-सूरत बनाकर वह कट्टर मुसलमान हो गया है (हालांकि यह ज़रूरी नहीं कि हर दाढ़ी रखने वाला मुसलमान, कट्टर हो). कहानी में यह भी पता नहीं चल रहा है कि जहां वह समोसे खा रहा है वह दूकान, किस समुदाय वाले की है. किसी मुस्लिम की दूकान थी अथवा हिंदू की. इसका ज़िक्र होता तो शायद खाने से परहेज़ करने की वज़ह स्पष्ट हो जाती. कहानी में यह स्पष्ट होता तो कहानी और गहरा प्रभाव छोड़ती.

वैसे यह एक अच्छी कहानी है और अपने कथ्य के एतबार से महत्वपूर्ण है. इस विषय पर और भी कहानियां लिखी जानी चाहिए.

बांदशाह हुसैन रिजवी
मुहल्ला बख्तियार, भरपुरवा, गोरखपुर २७३००१

'कथाबिंब' का अप्रैल-जून अंक प्राप्त हुआ. देख-पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई. हिंदी साहित्य संसार में आज इतनी साफ़-सुथरी और संतुलित सामग्री वाली पत्रिकाएं कम ही हैं. अन्य सामग्री के अलावा मैं भाषा विचार संबंधी निवेदन से बहुत प्रभावित हुआ. हिंदी में वर्तनी की अराजकता पर रोक लगना आवश्यक है. इस दिशा में यह एक सार्थक कदम है पर पत्रिका के इसी अंक में निर्धारित सिद्धांतों के उल्लंघन भी यत्र तत्र हुए हैं. लेखक वैसा लिखेंगे तो संपादन की भी एक सीमा है. इसलिए यह स्वाभाविक है. लेकिन आपके निर्देश संख्या १२ से सहमत होना कठिन मालूम होता है. चंद्रबिंदु को हटा देने से उच्चारण-दोष ऐसे पैदा हो जायेंगे कि अर्थ का अनर्थ हो जायेगा. 'हँसना' को 'हंसना' लिखेंगे तो हँसना पढ़ेंगे कैसे ? 'भँवर' को 'भंवर' लिखकर हम कैसे उसके उच्चारण की रक्षा करेंगे ? मात्र यह सुझाव है. मुद्रण की सुविधा के लिए शब्दों की आत्मा का हनन नहीं किया जाना चाहिए.

डॉ. शिववंश पांडेय
लीलाधाम, ३/३०७ न्यू पाटलिपुत्र कालोनी, पटना ८०० ०१३

'कथाबिंब' के जनवरी-मार्च ०२ में आपका संपादकीय पढ़ा और फिर 'शेष' के ताज़ा अंक में आपका पत्र पढ़ा. काफी अच्छा लगा जानकर कि कुछ तो हैं जो देश को सुधारने की फ़िक्र कर रहे हैं.

मैंने व मेरे मित्रों ने सद्भावना, ग़रीब बच्चों को शिक्षा देने तथा पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए "समाज" अर्थात 'सोशल एकैडमी फॉर मास अवेयरनेस एंड जस्टिस' नामक संस्था बनायी है. हम सभी मित्र आपके विचारों की कद्र करते हैं तथा सभी आपका साथ देने की आकांक्षा रखते हैं.

दिनेश चौहान 'अश्क'
द्वारा श्री रणजीत सिंह चौहान, प्यूरोलेटर इंडिया लि.,
सरोजिनी नगर, नयी दिल्ली-११००२३

❖ यह अंक भी प्रासंगिक, उद्देश्यपूर्ण और सरस रचनाओं से समृद्ध है. 'संपादकीय' में उद्घाटित प्रकाशन की निरंतरता बनाये रखने का जीवट स्तुत्य है, साथ ही आजीवन सदस्यों की लंबी होती सूची इस पत्रिका के दीर्घजीवी होने की संकेतक है.

कथा-खंड की पहली रचना 'अपना-अपना नर्क' (संतोष श्रीवास्तव) शिशिर नामक ऊर्जावन, महत्वाकांक्षी, भौतिकता प्रेमी और उत्कट प्रेमी युवक की अकालमृत्यु की सापेक्षता में अनूप नामक युवक की स्थायी विकलांगता बनाम दया मृत्यु की वैकल्पिक स्वीकार्यता की विषयवस्तु का वस्तुपरक निरूपण करने वाली मर्मस्पर्शी और जीवंत गाथा है. कथ्य का यथार्थपरक और साहसिक निष्कर्ष कारुणिक और त्रासद स्थितियों का मुक्तिदायी समापन करता है. शिशिर और उसके माता-पिता का चरित्रचित्रण, भोगवादी मानसिकता का मूर्खतापूर्ण और दायित्वहीन पक्ष-पोषण (माता-पिता के त्याग के विडंबनापूर्ण प्रतिफल के रूप में) और निक्की-मिनाक्षी की भावभूमियों का पारदर्शी अंकन, साथ ही गतिमय और उद्वेलक वर्णन इस उद्देश्यपूर्ण रचना की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं, जो कथ्य की एकोन्मुखता को प्रभावित करने वाली निस्थापित स्थिति (शिशिर की भोगवादी वृत्ति बनाम मां-बाप का उत्सर्ग) को ओझल कर देती हैं.

मां की असाध्य बीमारी और घर-आंगन पहुंच चुके बाज़ार के प्रतिनिधि के रूप में विद्यमान वी. सी. पी. पर परिवार द्वारा रामायण देखने की उत्कृष्ट अभिलाषा के विपर्यय के रूप में उपस्थित नायक-बेटे की असाह्यता को अद्‌भुत सहजता और गतिमयता में अभिव्यक्त करने वाली कमल की कहानी 'वैतरण' गठन की सीमाओं के बाद भी सामयिक विषय का उद्वेलक प्रतिपादन करती है. 'एक चिट्ठी अहमदाबाद से' (विजय) गुजरात में हुए निर्मम हत्याकांड की विभीषिका को आज तक जीने वाली असुरक्षित मानवता के अनुभव-संसार की स्पंदनपूर्ण पुनर्सर्जना है, जो सनोवर के माध्यम से अभिव्यक्त लेखकीय वैचारिकता और यांत्रिक निरूपण के कारण अपेक्षित प्रभाव नहीं छोड़ती. 'अनुराग वर्मा को...' (अनिमा नरेश) की संयोगों की श्रृंखला पर आधारित प्रेमकथा का शिल्प बहुप्रतिपादित कथ्य (दुष्यंत-शकुंतला प्रसंग !) का अद्‌भुत रूपांकन करता है. मनीषा और मूल्यधर्मिता की प्रतिनिधि भावुक प्रियंका और दुनियादार, तिकड़मी विजय के प्रणयभंग को गतिमय अभिव्यक्ति देने वाली कोमल कथा 'संधि' (पदुमी गगै) में वर्णित अंचल की सरल सुरम्यता और नायिका की उद्दाम दुर्बलता (प्रथम यौवन की अप्राप्ति...?) देर तक संवेदना पर छायी रहती है. 'नया चेहरा' (राकेश कुमार सिंह) सांप्रदायिक कट्टरता की बलिवेदी पर उत्सर्ग होते मानवीय संबंधों को स्वर देने वाली मर्मभेदी, सुगठित और सशक्त कथा है. लेखक की आत्मरचना एक साथ कई पीढ़ियों के रचनाकारों के जीवन का सत्य सहज, पारदर्शी, प्रेरक और प्रामाणिक दस्तावेज़ है. बलराम अग्रवाल, प्रद्युम्न भल्ला और महावीर रवांल्टा की लघुकथाएं, राजेंद्र तिवारी और प्रमोद भट्ट की ग़ज़लें इस अंक की अतिरिक्त उपलब्धियां हैं.

✤ श्रीनाथ

२१८/५, जे. के. कॉलोनी, कानपुर २०८ ०१०

❖ राकेश की कहानी 'नया चेहरा' सकारात्मक विचारधारा के साथ करुणा एवं संवेदना संप्रेषित करती है जिसे पढ़कर हर उदारवादी मुसलमान उदारवादी ही बना रहना चाहेगा जबकि कहानी 'एक ख़त अहमदाबाद से' नकारात्मक विचारधारा के साथ कटुता एवं वैमनस्य को बढ़ावा देती है जिसे पढ़कर कोई उदारवादी मुसलमान कट्टरवाद की ओर बढ़ना चाहेगा. और यह हमारे देश के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है कि पिछले दशक से ऐसी नकारात्मक विचारधारा, कटुता एवं वैमनस्य को बढ़ावा देने वाला साहित्य ही सभी शीर्षस्थ साहित्यिक पत्रिकाओं में छाया हुआ है. चाहे मुद्दा महिला जागरण हो, आरक्षण हो या बाबरी मस्जिद-गुजरात दंगा हो, महिलाओं पर पुरुषों के अत्याचार संबंधी एक से एक लोमहर्षक कहानी, आरक्षण के पक्ष में एक से एक कालजयी कहानी, बाबरी मस्जिद कलंक से कलंकित देश को कलंकमुक्त करने के लिए एक से एक भावपूर्ण कहानी और अब गुजरात दंगा ! 'एक ख़त अहमदाबाद से' जैसी अब तक बाइस कहानियां पढ़ चुका हूं. साहित्यिक पत्र-पत्रिकाएं उलटने में ही अब डर लगता है. अंत: देश के सभी कहानीकारों से विनम्र अनुरोध है कि कटुता और वैमनस्य फैलानेवाली कहानियां न लिखें. सकारात्मक विचारधारा की कहानी के उदाहरणस्वरूप राकेश की कहानी 'नया चेहरा' ज़रूर पढ़ें, जिसमें स्पष्टत: लिखा हुआ है - इस कहानी के नाम, पात्र, घटनाएं कुछ भी काल्पनिक नहीं हैं.

✤ उल्लास मुखर्जी

डॉ. सतीश चंद्र घोष पथ, वार्ड-१०, मधेपुरा ८५२११३ (बिहार)

❖ 'कथाबिंब' का जून ०२ अंक कई रोज़ पहले प्राप्त हो गया था. इधर-उधर भागदौड़ के कारण पत्र कुछ विलंब से लिख पा रहा हूं. आशा है अन्यथा नहीं लेंगे और क्षमा करेंगे.

हर बार की ही तरह पत्रिका का यह अंक भी शुरू से अंत तक प्रभावित कर गया. लघुपत्रिकाओं में इतनी साफ़-सुथरी और स्तरीय पत्रिकाएं प्राय: कम ही हैं. कथाकारों में संतोष श्रीवास्तव, विजय, पदुमी गगै और राकेश कुमार सिंह, लघुकथाकारों में बलराम अग्रवाल, महावीर रवांल्टा, रमेश चंद्र पंडित, हरिप्रसाद चौरसिया और कविताओं में नंदलाल पाठक, राजेंद्र तिवारी, रचना भारतीय इस अंक को पठनीय, संग्रहणीय बनाते हैं. अन्य रचनाएं भी अच्छी हैं.

कुशल संपादन के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकारें.

✤ जय चक्रवर्ती

एम. I/१४९, जवाहर विहार, रायबरेली २२९०१०

(कृपया शेष पृष्ठ-५२ पर देखें)

कुछ कही, कुछ अनकही

आरंभ से ही हमारी कोशिश रही है कि सारे 'वादों', विवादों से हट कर वर्तमान हिंदी कहानी का जो एक स्वाभाविक तेवर है वही पाठकों के सामने आये. अठारह-बीस से लेकर अपना पूरा जीवन साहित्य को समर्पित करने वाले सत्तर-पचहत्तर वर्ष तक के रचनाकारों की कहानियां देश के कोने-कोने से हमारे पास आती हैं. अधिकांश रचनाकारों को किसी भी आंदोलन से कुछ लेना-देना नहीं होता, न ही वे किसी 'वाद' से प्रतिबद्ध होकर सृजन करते हैं. साहित्य सृजन उन्हें सुख देता है, एक शक्ति देता है और उनमें एक ताज़गी का संचार करता है. - साहित्य की एक साथ न जाने कितनी धाराएं बह रही हैं. हमने अपने चयन में हमेशा समकालीनता का विशेष ध्यान रखा है और इसी के चलते नये-नये शेड्स की कहानियां पाठकों को परोसने का प्रयास किया है.

इस अंक में जयवंती डिमरी की कहानी 'दूसरा नरककुंड' एक महिला द्वारा दूसरी महिला के शोषण के विफल प्रयास की कहानी है. अपनी सास का प्रस्ताव कि शराबी और निकम्मे पति के मरने के बाद प्रवीणा अपने देवर से विवाह कर ले उसे स्वीकार नहीं होता. एक नरककुंड से निकलकर वह दूसरे में नहीं जाना चाहती. 'खून' एक छोटी संवेदनशील बच्ची की भावनाओं के खून की कहानी है, जिसके सहपाठी के पापा का खून हो जाता है - बच्ची को लगता है कि पापा की भावनाएं उसकी जैसी होंगी, किंतु पापा ख़बर सुनकर विचलित होने के स्थान पर ख़ुश होते हैं, कि उनकी पदोन्नति के रास्ते आने वाला रोड़ा हट गया. पुष्कर द्विवेदी की कहानी 'कल का मोर्चा' मिलीटरी से सेवानिवृत्त सिंह साहब की कहानी है जो अपनी परित्यक्ता बेटी निर्मला का मुकदमा जीतकर उसे एक नया 'कल' देना चाहते हैं. ग्रामीण परिवेश में पगी-रची कहानी है 'लखमी संग...' - चुनाव प्रचार के लिए आये कुछ शहरी लोग लखमी की लड़की केसू को उठा ले जाते हैं. यह हादसा लखमी से सबकुछ छीन लेता है, फिर भी वह आस नहीं छोड़ती. अमर स्नेह की कथा 'पहला पत्थर' आम आदमी 'बीसा' की कहानी है जो सीधे-साधे रास्ते पर चलते हुए जीवन व्यतीत करना चाहता है लेकिन सारी स्थितियां उसके विरुद्ध हैं. अंततः बीसा एक पत्थर उठाकर फेंकता है - इस समाज पर, इस दोगली व्यवस्था पर.

●

पिछले कुछ महीनों में राजनीति में बहुत ज्यादा उठा-पटक चलती रही है. 'भाजपा' ने अपने जादुई 'टोप' में से राष्ट्रपति पद के लिए डॉ. अब्दुल क़लाम के नाम की घोषणा की तो कॉन्ग्रेस के पास इसके सिवाय कोई चारा नहीं बचा कि क़लाम साहब के नाम का समर्थन करे, अन्यथा उसकी 'धर्मनिरपेक्षता' पर बट्टा नहीं लग जाता ? उधर वामपंथियों ने इतिहास के ठंडे बस्ते में से लक्ष्मी सहगल को प्रतीकात्मक लड़ाई के लिए खोज निकाला. यह बात और है कि वामपंथियों ने कभी भी सुभाष चंद्र बोस का समर्थन नहीं किया. रफ़ीक ज़कारिया क्यों पीछे रहते. उन्होंने एक लेख में लिखा कि अब्दुल क़लाम सच्चे मुसलमान हैं ही नहीं ! इसके बाद उपराष्ट्रपति का चुनाव भी बिना किसी हीलौहुज्जत के संपन्न हो गया.

'पोटा' को लेकर भी कॉन्ग्रेस व वामपंथी अपनी-अपनी ज़गह पर अड़े रहे. बड़ी मुश्किलों से संयुक्त अधिवेशन में 'पोटा' बिल पास हो पाया. 'पोटा' के विरोध के चलते मुंबई में अफ़रोज़ को छोड़ दिया गया जिसके ऊपर देशद्रोह का मुकदमा चल रहा था. अब जब ६ दिसंबर के आस-पास घाटकोपर रेल्वे स्टेशन और मुंबई सेंट्रल के मुख्य भवन में बम-विस्फोट हुए तो उसी महाराष्ट्र सरकार ने अपराधियों को 'पोटा' में ही गिरफ़्तार किया है. इसमें भी एक अपराधी संदिग्ध स्थितियों में भाग निकलने में सफल हुआ है.

अक्षरधाम में और दूसरी बार रघुनाथ मंदिर में आतंकवादियों ने हमला किया. जम्मू-कश्मीर में अघोषित युद्ध के चलते रोज़ हत्याएं एक आम बात समझी जाने लगी हैं तभी तो मुख्य चुनाव आयुक्त ने भी बेझिझक चुनाव की तारीख़ों की घोषणा कर दी - जम्मू-कश्मीर में चुनाव निष्पक्ष अवश्य संपन्न हुए हैं. किंतु किस सूची के आधार पर ? जिन लाखों लोगों को पिछले १२-१३ सालों में कश्मीर छोड़कर मज़बूरन जाना पड़ा है उनके लिए लिन्डो साहब ने क्या प्रबंध करवाया था ? मुख्य चुनाव आयुक्त का पूरा ध्यान तो गुजरात पर लगा हुआ था. हिंदुओं की धार्मिक यात्राएं नहीं निकलनी चाहिए, इससे अल्पसंख्यकों को खतरा महसूस होने लगता है. मतदाताओं की नयी सूची बननी चाहिए. कैंपों में रहने वाले शरणार्थी अपने घर चले गये अथवा नहीं. इसकी जांच कई-कई बार हुई. तब कहीं जाकर चुनाव की तिथियों की घोषणा हुई. बाद में ज्ञात हुआ कि मतदाता सूची में से अनेक नाम ग़ायब थे. ये दोहरे मापदंड नहीं तो और क्या है ?

●

गुजरात में हुए चुनाव और उसके परिणामों से हमें बहुत कुछ सीखना है. ध्रुवीकरण अवश्य हुआ है किंतु यह महज़ एक साल में ही नहीं हुआ है, न ही इसका कारण एक व्यक्ति, एक पार्टी या कोई दल विशेष है. इसका एक कारण तुष्टीकरण है. कुछ अन्य कारण भी हो सकते हैं, सबको मिलकर जिन्हें खोजना होगा. भारत विश्व का सबसे बड़ा जनतंत्र है. यहां का नागरिक चाहे वह जम्मू-कश्मीर का हो या गुजरात का, अपने वोट का महत्व बख़ूबी समझता है और अच्छी तरह सोच-समझकर अपने मत का प्रयोग करता है. चुनाव-विश्लेषक चाहे जितनी अटकलें लगाते रहें, रुझानों के क़यास लगाते रहें. *(कृपया शेष भाग पृष्ठ-५६ पर देखें)*

कहानी

दूसरा नरककुंड

निशा ने गौर से उस महिला को देखा. देखने से तो वह प्रवीणा भाभी ही लग रही थी. किंतु प्रवीणा भाभी यहां कैसे ? और तभी उन दोनों की नज़रें मिलीं. दो जोड़ी आंखों में एक साथ पहचान की चमक और अधरों पर मुस्कान उभरी. अगले ही क्षण वे दोनों एक दूसरे की बाहों में थीं.

"दीदी आप यहां कैसे ?" प्रवीणा भाभी ने ही पूछा.

"यही मैं सोच रही हूं कि आप यहां कैसे ? अकेली आयी हैं क्या ?"

"नहीं दीपक भी साथ है. अभी तो यहीं था." उन्होंने इधर-उधर नज़र दौड़ाते हुए दरवाज़े के सामने खड़े लड़के को आवाज दी - "दीपक इधर आओ. पहचानो तो ये कौन हैं ?"

दीपक ने एक क्षण के लिए निशा के चेहरे पर दृष्टि गड़ाई और अगले क्षण उसके हाथ निशा के चरण स्पर्श कर रहे थे.

"बुआजी प्रणाम !"

"पहचान लिया." निशा ने दीपक का चुंबन लेते हुए कहा.

"लेकिन मैं तुम्हें अकेले में देखती तो पहचान न पाती. वाह क्या कद निकला है." कहते ही निशा चुप हो गयी. देवेश का कद क्या कुछ कम था. बिल्कुल अपने बाप पर गया है.

"आज सुबह किस भाग्यवान का मुंह देखा होगा भाभी जो आपके दर्शन हुए."

"दीदी आप तो हमें छोड़कर ऐसी गयीं कि दुबारा लौटकर नहीं आयीं. सोचा तो होता भाभी ज़िंदा है भी कि नहीं."

"ऐसा क्यों कहती हैं भाभी. आप लोगों को क्या मैं भूल सकती हूं. यह बताइए, यहां कितने दिन का प्रोग्राम है ?"

"बहुत दिन तो नहीं रुक पाऊंगी दीदी. नेहा को उसकी भाभी के पास छोड़कर आयी हूं, उसके टर्म पेपर्स चल रहे थे. कल लौटने का विचार था."

"कल आप नहीं जायेंगी भाभीजी. एक दिन रोकने का मेरा भी तो हक है न ?"

"आपका कहा क्या मैं टाल सकती हूं ?"

टाला तो आपने बहुत कुछ है, निशा ने मन ही मन सोचा किंतु प्रत्यक्ष में केवल मुस्कुरा कर रह गयी. इतने वर्षों बाद मिले हैं, स्मृति के गह्वर से आज के दिन वह केवल मधुर यादें ही निकालेगी. कड़वी, कसैली यादों को उलटने-पलटने के लिए तो पूरा जीवन पड़ा है.

"अच्छा भाभी अभी मैं चलूंगी. शाम को आपको लेने आऊंगी."

पूरे दस वर्ष पश्चात प्रवीणा भाभी से यह आकस्मिक भेंट. निशा को दस वर्ष पुराना वह मनहूस दिन याद आ गया जब देवेश की असामयिक मौत ने पूरे मोहल्ले को हिलाकर रख दिया था. प्रवीणा भाभी तो जैसे पगला गयी थीं. लेकिन आज दीपक और भाभी को स्वस्थ और प्रसन्न देख निशा को प्रसन्नता हुई. दीपक का कद और रूप तो बाप से बढ़कर निकला है. रूप और गुणों में तो प्रवीणा भाभी की सानी नहीं. योग्य न होतीं तो क्या अकेली अपने बच्चों को योग्य बना पातीं. एक प्रकार से मायके की ओर रुखकर उन्होंने ठीक ही किया.

जयवंती डिमरी

देवेश की अकाल मृत्यु का वह हादसा ! रात को अचानक उसके पेट में दर्द हुआ, तड़के सुबह उसे अस्पताल ले गये और दस बजे उसकी देहलीला समाप्त थी, पैनक्रीज़ फट जाने के कारण पूरे शरीर में ज़हर फैल गया था. शराब उसे ले डूबी. बेचारी अम्मा का जवान बेटे की मौत से बौराना स्वाभाविक था. किंतु देवेश के चौथे के दिन प्रवीणा भाभी का वह उग्र और विकराल रूप देखकर सभी लोग सकते में आ गये थे. अपनी सास को देखते ही वह क्रोधित सर्पिणी सी फुंकार उठती.

"इनसे कहो मेरे सामने से चली जायें."

बेचारी अम्मा का दीपक और नेहा की ओर बढ़ा हाथ बढ़ा ही रह जाता कि भाभी बाजिनी सी झपटकर बच्चों को अपनी ओर खींच लेतीं. प्रारंभ में सभी ने सोचा शोक और सदमे के कारण वह कदाचित अपना मानसिक संतुलन खो बैठी थीं, कुछ समय बाद संभल जायेंगी किंतु सभी की आशा, अनुमान एवं इच्छा के विपरीत प्रवीणा भाभी की उग्रता तो दावानल की भांति दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही थी.

उस दिन निशा अभी सोकर उठी ही थी कि अम्मा का बुलावा आ गया. दिन में तीन बार अम्मा का बुलावा आना एक साधारण बात थी. किंतु इतनी सुबह अम्मा के बुलाने से निशा आशंकित हुई. वह तुरंत अम्मा के पास पहुंची.

अम्मा अपना ट्रंक खोल संज्ञाशून्य सी पथराये नेत्रों से ट्रंक में फैले अस्त-व्यस्त सामान को देख रही थीं. निशा को देखते ही वह बिफर पड़ीं - "निशा बेटी तू ही बता मैं क्या करूं, तू कहती थी सब्र करूं, सब ठीक हो जायेगा, यह देख बहू ने आज मेरा

ट्रंक भी भिजवा दिया. देख यह चढ़ावे के जेवर, कपड़े सब लौटा दिये हैं. अरे मेरा बेटा क्या गया, मेरी बहू, पोता, पोती सब पराये हो गये. तू बता इन जेवर कपड़ों का मैं क्या करूं ?"

ट्रंक में कुछ साड़ियां और जेवर थे जो भाभी को ससुराल से अपने विवाह के अवसर पर मिले होंगे. निशा हतबुद्ध थी. इतने दिनों से वह अम्माजी को धैर्य और संयम बरतने को कह रही थी लेकिन प्रवीणा भाभी का व्यवहार अब औचित्य एवं मर्यादा की सीमा का उल्लंघन करने लगा था. पति की मृत्यु का यह अर्थ तो नहीं कि वे अपने मृत पति की माता का इस भांति अपमान और तिरस्कार करें.

"मैं कहती हूं यह सब उसके मायकेवालों की करतूत है," अम्माजी बोलीं, "उन्होंने ही बहू को हमारे खिलाफ़ भड़का दिया है. देवेश के जाते ही उसने लाज और शरम का परदा फेंक दिया. इतने सालों उसने अपने जेठ से हमेशा परदा किया. कल तू देखती कैसे भरी भीड़ में उसने सोमेश से कह दिया - अम्मा और रमेश का जिम्मा अब मेरा नहीं."

देवेश का छोटा भाई रमेश विशेष पढ़ नहीं पाया. अपना पेट भरने लायक कमा लेता था. मकान का एक सेट किराये पर था जिसमें निशा रह रही थी. प्रवीणा भाभी की नौकरी थी, देवेश छुटपुट ठेके करता था, गृहस्थी चल रही थी. देवेश के जाते ही घर एकदम वेपर्द हो गया. इस घर ने निशा को एक किरायेदार नहीं अपितु एक पारिवारिक जन का मान दिया था. उनके दुःख के दिनों में उनकी सहायता करने का निशा का दायित्व था किंतु प्रवीणा भाभी उससे निगाहें बचा लेतीं. निशा को उनसे कहने सुनने का अवसर ही न मिला. अतः अम्मा का एकपक्षीय विलाप सुनने के अतिरिक्त उसके पास अन्य कोई उपाय ही न था.

देवेश की तेरहवीं का दिन था. अम्माजी का बड़े भैया सोमेश के साथ बरेली जाना निश्चित हो चुका था. उनके प्रस्थान में अभी कुछ विलंब था कि बैठक खाने में पुरुष मंडली के सम्मुख आकर भाभी ने सबको अप्रकृतिस्थ कर दिया. सीधे सोमेश, अपने जेठ की ओर उन्मुख हो वह तीखे स्वर में बोलीं - "रमेश से कहिए वह अपना सामान दुछत्ती में डाल ले नहीं तो मैं उसका सामान सड़क पर फेंक दूंगी."

सब लोग सकते में आ गये. किसी से भी कुछ कहते न बना. इतने लोगों की उपस्थिति से हिम्मत पाकर अम्माजी बोलीं - "बहू तू तो बौरा गयी लगती है. मैं तेरे पास रहती तो तुझे और तेरे बच्चों को सहारा ही मिलता लेकिन तेरी अकल पर तो पत्थर पड़ गये हैं. समय के साथ तेरी मत भी मारी गयी. रमेश तेरे पास रहेगा तो बाहर के चार काम भी कर देगा. तीन जनों की रसोई में चौथे की रोटी तो निकल ही जाती है."

ठीक ही तो कह रही थीं अम्माजी, लेकिन भाभी अपनी बात पर अडिग थीं - "तीन जनों की रसोई में चौथे के रोटी यदि कोई

एम. ए. (अंग्रेजी), पीएच. डी.(अंग्रेजी)

लेखन : *हिंदी तथा अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लेखन, पठन-पाठन. हिंदी में लगभग चालीस कहानियां विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित. अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद.*

प्रकाशन : *'ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ अर्नेस्ट हेमिंग्वेज़ शार्ट स्टोरीज' (अंग्रेजी में). 'द ड्रुक्पा मिस्टिक : भूटान इन ट्वन्टी फर्स्ट सेंचुरी' (अंग्रेजी में प्रकाशनाधीन). दो कहानी संग्रह और एक लघु उपन्यासिका 'हिंसा' प्रकाशनाधीन. भूटान से प्रकाशित एक अंग्रेजी उपन्यास 'द हीरो विद ए थाउजैंड आईज़'* **(The Hero with A Thousand Eyes)** *का हिंदी अनुवाद प्रगति में. उपन्यास अंश 'गगनांचल' और 'विपाशा' पत्रिकाओं में प्रकाशित.*

विशेष : *गत २७ वर्षों से शिक्षण कार्य में रत. नाइजीरिया, भूटान में भी अध्यापन.*

संप्रति : *हिमाचल विश्व विद्यालय में अंग्रेजी में अध्यापन.*

समस्या नहीं है तो उसे अपने साथ ले जाइए. मेरे काम की चिंता करने की अब आपको कोई आवश्यकता नहीं."

निशा ने तब पहली और आखिरी बार अपना मुंह खोला- "भाभी अम्मा ठीक ही कह रही हैं."

लेकिन प्रवीणा भाभी जिन्होंने सास, जेठ, देवर को दरकिनार कर दिया वह भला मुंहबोली ननद का मान रखतीं. उनका स्वर अवश्य अपेक्षाकृत नर्म किंतु दृढ़ था.

"दीदी इस संबंध में आप कुछ मत कहिए. मैं आपकी इज्जत करती हूं. आप और कुछ भी कहेंगी मुझे मान्य होगा लेकिन इस संबंध में मेरा निर्णय अंतिम है."

अम्माजी रमेश का सामान दुछत्ती में पहुंचा रोती कलपती बरेली चली गयीं. दीपक और नेहा के चेहरे तो भावशून्य हो गये थे. इतने कम समय में इतना कुछ घटित हो जाने के कारण उनका संज्ञाशून्य होना स्वाभाविक था. अपनी स्वतंत्र राय अथवा प्रतिक्रिया व्यक्त करने की अभी उनकी उम्र ही कहां थी. प्रारंभ से ही बच्चों की कमान भाभी के हाथ में रही. भाभी अपनी जुबान की इतनी

पक्की निकलीं कि रमेश को खाना तो क्या कभी पानी तक के लिए नहीं पूछा. कभी वह सामने पड़ जाता तो अपरिचित, अजनबी सी किनारे हो लेतीं. परिवार, समाज की सीमा-रेखा देवेश के जाते ही उन्होंने एक सांस में न जाने क्यों और कैसे पार कर ली. अम्मा और रमेश से उनके संबंध क्या मात्र देवेश के जीवित होने तक थे ? एक सेतु टूटा नहीं कि वह नदी का टूटा, अपाटनीय किनारा हो गयीं. सेतु टूटने का न कोई शोक अथवा पश्चाताप. नये सेतु निर्माण की न कोई मांग, न दरकार !

इस हादसे के छः माह पश्चात निशा का विवाह हो गया. उसके पश्चात वह प्रवीणा भाभी से आज मिल रही थी. सत्य तो यह है कि निशा ने उनसे मिलने का प्रयत्न ही नहीं किया. पारिवारिक एवं मानवीय संबंधों के निर्वाह में प्रवीणा भाभी की निष्ठुरता देखने के बाद निशा के मन में एक गांठ सी पड़ गयी थी.

❒

दरवाजे की घंटी से निशा की तंद्रा भंग हुई. प्रवीणा भाभी थीं.

"भाभीजी आप ? मैं तो आपको लेने आ ही रही थी."

"दो कदम पर तो आपका घर है, सो खुद ही चली आयी. वैसे भी यहां किसी से मेरा विशेष परिचय तो है नहीं. वीणा ने दीदी के साथ रहकर बी.एड. किया था, उन्हीं दिनों दो-चार बार मेरे यहां भी आयी, बस इतना सा परिचय है. उसके माध्यम से आपसे भेंट होने का सौभाग्य रहा."

हल्के आसमानी रंग की गुलाबी बेल बूटे जड़ी साड़ी प्रवीणा भाभी पर खूब खिल रही थी. एक आदमी के गुज़र जाने से आपसी संबंध और व्यवहार ही नहीं, शब्द गड़बड़ा जाते हैं. कहीं अपने रूप, साजसज्जा और स्वास्थ्य की प्रशंसा को वह अन्यथा न लें, यही विचारकर निशा ने अपने मुंह से निकलते शब्द जबरन रोक लिये.

"बैठिए भाभी. दीपक को भी ले आतीं."

"दीपक बाज़ार गया हुआ था, उसे यहां आने के लिए कह आयी हूं."

"दीपक क्या कर रहा है ?"

"इंजीनियरिंग का उसका यह आख़िरी साल है."

"रियली ? वंडरफुल. बधाई हो भाभी. और नेहा ? वह क्या कर रही है ?"

"नेहा इस साल प्लस टू कर लेगी."

"और आपकी नौकरी कैसी चल रही है ?"

"मेरी नौकरी भी चल ही रही है. हां मैंने एम. ए. कर लिया."

"मैंने तो तब भी आपसे कितनी ही बार एम. ए. करने के लिए कहा था लेकिन तब आपने कुछ रुचि ही नहीं ली."

"रुचि तो..." उन्होंने वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया. पुनः कुछ रुकते हुए बोलीं - "इनके जाने के बाद समय भी था फिर ये भी तो..." वे पुनः चुप्पी लगा गयीं.

देवेश ग्रेजुएट भी नहीं था. पत्नी का पति से अधिक शिक्षित एवं योग्य होना भी तो समस्याजनक हो सकता है, यह तो निशा ने कभी सोचा ही नहीं.

प्रवीणा भाभी निशा के साथ रसोई में आ गयी थीं.

"क्या बना रही हैं दीदी आप ? कुछ हल्का सा ही बनाइए. शादी का भारी खाना खाने के बाद कुछ हल्का फुल्का खाने का मन है. मुझे बताइए मैं कुछ मदद करूं."

"आप कुछ मदद नहीं करेंगी, बस आप आराम से यहां बैठिए." उसने कुर्सी उनके सामने सरकाते हुए कहा - "आज बरसों बाद अपने हाथ से आपको खिलाने का सौभाग्य मिला है. इसे मैं यूं हाथ से नहीं जाने दूंगी."

देवेश की मृत्यु के पश्चात की कटु स्मृतियां भुला निशा प्रवीणा भाभी के हाथ से बने पकवानों के स्वाद और महक में खो गयी थी. उनकी बनाई अरबी की रसेदार सब्ज़ी, भरवां करेले, कमल ककड़ी के कोफ़्ते, लौकी की खीर और तरह-तरह के अचारों की महक का स्मरण कर निशा के नेत्र तरल हो आये. इतनी स्नेहिल और उदारमना भाभी अम्माजी और रमेश के प्रति आख़िर क्यों इतनी कटु हो गयीं ? किंतु इस समय अम्मा का प्रसंग छेड़कर वह वातावरण और भावनाओं की ऊष्मता में विघ्न नहीं डालेगी. इसके अलावा प्रवीणा भाभी इस समय उसकी अतिथि थीं.

अम्मा और रमेश का प्रसंग भाभी ने स्वयं ही उठाया.

"दीदी मैं जानती हूं आप अम्माजी के प्रति मेरे व्यवहार के कारण मुझसे नाराज़ हैं. इतने वर्षों में आपने कभी एक चिट्ठी तक नहीं डाली. उस समय आपके अनुरोध को अनसुना कर मैंने आपके विश्वास को ठेस पहुंचाई लेकिन दीदी इसके अतिरिक्त मेरे पास कोई दूसरा विकल्प नहीं था. अम्माजी मुझे खाई में धक्का देने के लिए तैयार थीं और मैं एक कुएं से निकलकर दूसरी खाई में न गिरने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थी."

"यह आप किस कुएं और खाई की बात कर रही हैं भाभी ? मैं कुछ समझी नहीं." निशा ने विस्मय और हैरत से कहा.

"ग़लत विवाह भी तो एक अंधे कुएं में गिरने जैसा ही है, दीदी. अम्माजी ने झूठ बोलकर अपने बेटे का विवाह मुझसे कराया. अपने बारहवीं फेल बेटे को बी. ए. पास बताया, उसके सारे ऐब बड़ी होशियारी से छिपा गयीं. मेरे मायके में अधिक छानबीन करनेवाला कोई था नहीं. बाप था नहीं, भाई छोटे थे, लेकिन अम्माजी को इससे क्या ? उनके शराबी, ऐबी बेटे को कमाऊ बीवी मिल गयी. बेटे का विवाह कर उनके कर्तव्य की इतिश्री हो गयी. पुत्रवती, पौत्रवती होने का गौरव तो उन्हें मिल ही गया."

तो अम्मा पर भाभी के क्रोध का यह कारण था. लेकिन रमेश ? उसका क्या अपराध था ?

"लेकिन भाभी रमेश ? आपने कभी उसे पानी तक के लिए नहीं पूछा."

"उस दिन इन्हें गये सिर्फ़ चौथा दिन था." वह बोली - "सुबह के चार बजे का समय रहा होगा. लेकिन मेरी आंखों में कैसी नींद ? सारी रात मैं दीवार से सटकर बैठी रही. सुबह होते ही अम्माजी मेरी बगल में मुझसे सटकर बैठ गयीं. मुझे सहलाते हुए आंसू बहाती हुई बोलीं - "बहू मैं तो तेरे कल की सोच हैरान, परेशान हूं. तेरी इतनी बड़ी ज़िंदगी यूं अकेली कैसे कटेगी. अभी तेरी उमर ही कितनी है. इस उमर में तो आजकल लड़कियों की शादी होती है. जवानी की उमर, छोटे दो नादान बच्चों का साथ. जमाना देखो तो कैसा ख़राब है. आज मैं हूं, डाल का पका फल - आज हूं तो कल नहीं. घर की इज्जत घर में बनी रहे यही सोच विक्रम की अम्मा कह रही थी. मैंने कहा अभी तो जुम्मा जुम्मा सात दिन भी ना हुए. अपने लड़के को तो ख़ैर जैसे तैसे मैं राज़ी कर लूंगी."

"मेरे शरीर में दीदी जैसे करेंट लगा हो. क्रोध, आवेश और अपमान के ज्वार में उफनती मैंने भरपूर जोर से उन्हें झकझोर कर पूछा - "एक बार फिर से तो कहिए विक्रम की अम्मा ने क्या कहा ?"

मेरा वह अप्रत्याशित रौद्र रूप देखकर वह सहम गयीं - "अरे बहू ऐसी दुनियां से निराली मैंने क्या कह दी जो तू ऐसी लाल पीली हो रही है. मेरे कुंवारे लड़के को लड़कियों की क्या कमी है. मैं तो सिर्फ़ तेरा और तेरे बच्चों का सोचकर..."

"आप इसी समय मेरी आंखों से दूर हो जाइए वरना..." मेरे क्रोध के समक्ष सभी शब्द छोटे पड़ रहे थे.

"वरना तू क्या करेगी ?" वह घिघियाती हुई बोलीं.

"वरना... मैं बताती हूं मैं क्या करूंगी." उस क्षण यदि वह कमरे से बाहर न भागी होतीं तो मैं नहीं जानती क्या अनर्थ घटित हुआ होता. क्रोध और उन्माद में व्यक्ति कैसे प्राणघाती हो उठता है यह मैंने उसी दिन जाना. यह मेरी सर्वस्व स्वहारिणी ऐसे ही छद्म वाक्यों से पंद्रह वर्ष पूर्व अपने ऐबी, नालायक पुत्र को मुझ पर लाद गयी. इन पंद्रह वर्षों में मैंने इस औरत की करनी ही तो भरी. और उस ऐबी को मरे चार दिन भी नहीं हुए, यह मुझे दूसरे नरककुंड में झोंकने के लिए तैयार बैठी है. आज से पंद्रह वर्ष पूर्व की घटना की पुनरावृत्ति रोकने के लिए मैं कृतसंकल्प हो उठी. मैंने चढ़ावे के ज़ेवर, कपड़ों की गठरी उनके मुंह पर फेंकी और अंदर से कमरे की कुंडी चढ़ा ली. पूरे तेरह दिन तक मैं अपने कमरे की कुंडी चढ़ाकर सर्पिणी की भांति उस कमरे में कुंडली मारकर बैठी रही. इस औरत का क्या विश्वास, कभी रात में रमेश को..."अब आप ही बताइए दीदी मैं क्या करती ?" वे फ़फ़क पड़ीं.

आश्चर्य, क्षोभ एवं पश्चाताप से वशीभूत निशा के गले में जैसे पत्थर अटक गया हो.

"भाभी यह सब आपने मुझसे या किसी और से कहा होता. आपने अकेले सब कुछ सहा."

"दीदी यह मेरी लड़ाई थी इसमें मैं आपको कैसे शामिल करती ? पंद्रह वर्ष पूर्व भी यदि मैंने अपने जीवन के प्रति इतनी ही सतर्कता दिखाई होती तो मैं एक नारकीय जीवन से बच सकती थी. फिर आप अम्माजी को नहीं जानतीं. आप भाग्यशाली हैं जो आपका अम्मा या विक्रम की अम्मा सदृश्य औरतों से पाला नहीं पड़ा."

सत्य ही तो कह रही थीं प्रवीणा भाभी. दिन में उसे दसियों बार बुलावे भेजती अम्माजी कितनी खूबसूरती और चालाकी से सही बात छिपा गयी थीं.

"रमेश कहां है ?" निशा ने पूछा.

"होगा कहां, वहीं कहीं अपने भाई के पास."

"वह भी बरेली चला गया ?"

"नहीं अपने दूसरे भाई के पास. स्वर्ग में है या नरक में यह तो ऊपरवाला ही जाने. वह दमे और खांसी का मरीज. इतनी उमर भी न जाने कैसे काट गया."

निशा अवाक थी. आंसुओं के बोझ से बोझिल होती पलकें नीची कर उसने अपना हाथ प्रवीणा भाभी के हाथ पर रख दिया.

विंडमेयर, निचला तल, एल्फिन लॉज,
चौड़ा मैदान, शिमला १७१ ००४

"क्योंकि इंसा मेरे शहर का"

मनीषकुमार मिश्र

लापता इंसानियत, मग़रूर बड़ा इंसान हो गया है।
चेहरा मेरे ही शहर का, बड़ा ख़ौफनाक हो गया है ।।
अब मेरे आंसुओं पे, फेंकते हैं वो चंद सिक्के।
लगता है इंसा मेरे शहर का, बड़ा धनवान हो गया है ।।
बर्बाद यक़ीनन मैं, इसी शहर में हुआ।
पर मेरी बर्बादियों में, आबाद लोगों का बड़ा हिस्सा है ।।
ज़िंदगी मेरी तो, काग़ज़ की कश्ती हो गयी है।
क्योंकि इंसा मेरे शहर का, बवंडर हो गया है ।।
हरदम मेरी बातें उसे, नश्तर सी लगी हैं।
क्योंकि मेरी बातों से, खुशामद का शहद टपकता नहीं है ।।
शक़्ल अपनी ही देखकर, वह फोड़ता है आईना।
क्योंकि आईना उसके वास्ते, गिरगिट सा रंग नहीं बदलता है ।।
आबरू अपनी बचाने के वास्ते, एक खंजर छुपा रख लेना।
क्योंकि इंसा मेरे शहर का, आदमख़ोर हो गया है ।।

बेतुरकर पाड़ा, चौधरी कॉलोनी, कल्याण (प.) ४२१३०१

कहानी

खून

स्कूल में सर्वत्र एक ही चर्चा... अजय के पापा का खून हो गया. गुंडों ने उसका मर्डर कर डाला.

'खून' शब्द ने उस नन्हीं-सी लड़की को एक साथ आतंक तथा कल्पना में डुबो दिया है. उसकी आंखें चारों तरफ़ अजय को तलाश रही हैं जो उसी की क्लास में उसके साथ पढ़ता है... लेकिन उसके तो पापा मर चुके हैं, वह स्कूल भला कैसे आ सकता है ? एक बच्चे ने उसे जैसे समझाया है. इस पर वह जैसे किसी सोच में डूब गयी है और सवाल पर सवाल उसे घेर रहे हैं - तो क्या अजय के पापा अब कभी घर नहीं लौट पायेंगे ? ...अजय का क्या होगा, कौन उसे प्यार करेगा ? ... कैसे रहेगा वह पापा बग़ैर ?

ऐसे में उसे अपने पापा की चाहना ने बहुत तीव्रता से आ घेरा है. उसके पापा कई रोज़ से कहीं बाहर गये हुए हैं. उसके चारों तरफ़ पापा के प्यार का एहसास घिर आया है. लेकिन पापा का स्पर्श न पा कर उसे भीतर एक बेचैनी मथने लगी है, जैसे कभी-कभी पानी न मिलने पर प्यास के मारे उसका गला सूख जाता है और ऐसे में पानी के अलावा सब कुछ बेकार लगने लगता है.

प्यार तो उसे मम्मी भी कम नहीं करतीं. पर पापा जितना उसे नहीं लगता. पापा कभी उसे डांटते तक नहीं लेकिन मम्मी डांट भी देती हैं. उसे याद हो आयी है जब एक बार पापा के एक शेविंग-ब्लेड से उसकी अंगुली कट गयी थी तो खून ही खून हो गया था. कितना दर्द हुआ था और वह कितना रोयी-चिल्लायी थी. इस पर उसे मम्मी की कैसी डांट खानी पड़ी थी- "बहुत ही लापरवाह लड़की है... तेरे को किसने कहा था ब्लेड से छेड़छाड़ करने को ?"

इस पर पापा ने मम्मी को झिड़का- "देख नहीं रही क्या हाल हो गया बेचारी का... ऊपर से उसे डांट पिला रही हो !"

फिर पापा ने तुरंत उसकी अंगुली को धो-पोंछ कर दवा लगायी और बड़े लाड़ से अपनी गोद में बैठा कर उसे दुलारते रहे थे.

पापा ऐसे ही उसे लाड़ करते और ऐसे में मम्मी चिढ़ कर कहतीं -"ज्यादा सिर मत चढ़ाओ इसे... कल पराये घर भी भेजना है."

वह पापा की गोद से उचक कर उठ बैठती और रोने लगती -"पापा, मैं नहीं जाऊंगी पराये घर. मैं क्यों जाऊं ?"

पापा मुस्करा कर उसके सिर पर हाथ फिराते -"कहीं नहीं जायेगी मेरी लाड़ली."

मम्मी के चेहरे पर भी मुस्कुराहट आ ही जाती लेकिन पापा को चिढ़ाकर कहतीं - "तो धरे रहो इसे सर पर. कल बिगड़े, तब भुगतना."

"पापा पलट कर कह देते - "भुगत लेंगे. तुम्हें नहीं भुगत रहे क्या ?"

कृष्ण सुकुमार

उसकी मासूम कल्पना में अजय का चेहरा उभर आया है... बिना पापा का अजय ! अजय के पापा भी अजय को इतना ही प्यार करते होंगे... लेकिन कैसा लगता होगा अजय को बिना पापा के ?

वह कल्पना करने लगती है किंतु अजय का कोई स्पष्ट चेहरा नहीं उभर पाता. अजय के चेहरे की ज़गह उसे सहसा अपना ही चेहरा महसूस होने लगता है- अकेला... मायूस... असहाय ! फिर अजय के पापा के चेहरे की ज़गह आ खड़ा होता है उसके अपने पापा का चेहरा - खून से लथपथ ! और एक बुरी आशंका उसकी मासूम कल्पना में भय बन कर पसर जाती है - अगर उसके अपने पापा ही कभी घर न लौटें ? कोई उनका खून कर डाले !

उसने मम्मी से पूछा है - "पापा कब आयेंगे ?"

"आ जायेंगे बेटा, आज या कल शाम !"

"न आये तो... ?"

"चल पगली ! क्यों न आयेंगे ?"

फिर मम्मी ने उसे प्यार से गोद में उठा कर दुलारा है- "पापा की याद आ रही है ?"

सिर हिला कर उसने हामी भरी है. और फिर मन ही मन वह अपने को समझाने भी लगी है - उसके पापा तो हिम्मत वाले पापा हैं. वे खून से नहीं डरते. वे नहीं मर सकते. वे जब भी बाहर जाते हैं लौटकर घर ज़रूर आते हैं.

उसके भीतर अपने पापा की हिम्मत की कुछ यादें जैसे कौंध उठी हैं - शेव करते समय पापा का गाल कई बार कट जाता है. लेकिन खून निकलने पर भी वे 'सी ऽ ऽ' तक नहीं करते ! एक बार तो उसके पापा के पैर पर एक भारी पत्थर ही आ गिरा था. खाल फट गयी थी और ढेरों खून निकला था ! लेकिन हिम्मत वाले पापा... न रोये न चिल्लाये.

सहज ही उसकी कल्पना में अजय के पापा की पीड़ा आ जुड़ी है. इतना खून निकला होगा अजय के पापा का भी ? ढेर सा दर्द उन्हें हुआ होगा ? कितना खून निकला हो क्या पता ! कोई थोड़े से खून से मरता थोड़ई है. बहुत निकला होगा तभी तो मरे वो ! थोड़े खून निकलने से तो पापा को कुछ नहीं हुआ.

भय और पीड़ा ने उसकी कल्पना को घेर रखा है- इत्ता ढेर खून देख वह तो बहुत रोयी-चिल्लायी होती ! तो क्या अजय के पापा भी रोये-चिल्लाये होंगे ? क्या पता न भी रोये हों, अगर वे भी उसके पापा जैसे हिम्मत वाले हों तो !

उसके भीतर भारी उथल-पुथल है. इस उथल-पुथल में कई सवाल हैं, जिन्हें वो अपनी मम्मी से पूछना चाहती है- ये गुंडे लोग खून क्यों करते हैं ?

लेकिन मम्मी ने उसे टाल दिया है- "बच्चे ऐसी बातें नहीं सोचते ... बेटा तू अपनी स्टडी की तरफ़ ध्यान दे. होम वर्क किया या नहीं .... !"

यही सवाल अगले दिन वह पापा से उनके आने पर पूछेगी. पापा ज़रूर उसे बतायेंगे. वे बाहर रहते हैं, मम्मी तो घर में रहती हैं. मम्मी को भला क्या मालूम !

लेकिन अगले रोज़ वही सवाल उसने अपने सहपाठी बच्चों के सामने रखा है- "मोनू, तेरे पापा को पता है ये गुंडे लोग खून क्यों करते हैं ?"

"ये तो मेरे को मालूम है... फिल्में नहीं देखती क्या ? गुंडे लोग पैसे लेकर खून करते हैं."

एक अन्य बच्चे ने सहमति जताई है - "हां-हां, किराये पर चलते हैं ये लोग."

"इन्हें पैसा कौन देता है ?"

"सरकार... ! एक बच्चा तत्काल उत्तर देता है."

"सरकार नहीं बेवफूक, सेठ लोग... तुम लोग टी. वी. नहीं देखते ?"

"पर क्यों ?" लड़की ने सवाल किया है.

"क्या पता."

"कभी सचमुच में देखा तूने गुंडों को ?"

"ना जी, ना ! मैं क्यूं देखूं ? हमारा भी खून कर दें तो ?"

"पर हम तो बच्चे हैं."

"वे बच्चों से डरते हैं क्या ?"

"इनके बच्चे नहीं होते ?"

"पता नहीं. होते तो यूं मारा-मारी करते क्या ?"

"तो जिनके बच्चे होते हैं, उन्हीं के पापा का खून कर डालते हैं ये लोग ?"

"क्या पता !"

लड़की की नन्हीं कल्पना भय और आतंक से अस्थिर हो जाती है.

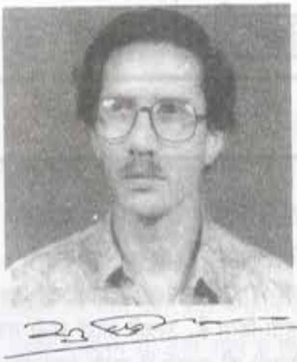

१५ अक्तूबर १९५४;
स्नातक

लेखन : *कहानी, उपन्यास, ग़ज़ल, कविता, व्यंग्य साहित्यिक पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित.*

प्रकाशन : *'इतिसिद्धम्', 'हम दो पाये हैं', 'आकाश मेरा भी' (तीनों उपन्यास); 'सूखे तालाब की मछलियां' (कहानी-संग्रह) एवं 'पानी की पगडंडी' (ग़ज़ल-संग्रह) प्रकाशित.*

विशेष : ❋ *उ. प्र. अमन कमेटी, हरिद्वार द्वारा १९९४ का सृजन सम्मान.*
❋ *'इतिसिद्धम' उपन्यास पर वाणी प्रकाशन द्वारा १९९७ का 'प्रेम चंद महेश' सम्मान.*
❋ *समन्वय, सहारनपुर द्वारा १९९७ का सृजन सम्मान.*
❋ *म. प्र. पत्र लेखक मंच बैतूल द्वारा वर्ष २००० हेतु 'काव्य-कर्ण' सम्मान.*

संप्रति : *आई. आई. टी. रुड़की में कार्यरत.*

वह डरते-डरते पूछ रही है - "तो इन गुंडों ने अजय के पापा का खून क्यों किया ?"

एक बच्चे ने ज़वाब देना चाहा है - "मेरे पापा मेरी मम्मी को बता रहे थे कि अजय के पापा न, बेवफूक थे न, इसलिए."

"नहीं," लड़की ने तुरंत विरोध दर्ज़ किया है, "क्यों हों बेवकूफ. बहुत अच्छे थे वे. मेरे पापा के साथ ऑफिस में काम करते थे वे. अजय के हैपी बर्थ डे पर मैंने उन्हें देखा था. बच्चों को बहुत प्यार करते थे."

"करते होंगे प्यार, पर थे बेवकूफ."

"नहीं हो सकते."

"थे भई, थे... मेरे पापा झूठे थोड़ई न हैं."

"मेरे भी पापा झूठ नहीं बोल सकते, उनसे पूछूंगी."

सहसा लड़की की कल्पना में एक ख्याल आ समाया है - "मोनू, तेरे पापा रोये ?"

"क्यूं रोयें मेरे पापा ?"

"अजय के पापा की सुन कर."

"नहीं तो !"

फिर यही सवाल उसने कई दूसरे बच्चों से भी किया है. लेकिन सभी का उत्तर 'न' में सुन कर वह एक उदास भरी सोच में पड़ गयी है.

उसके भीतर फिर एक सवाल है - तो... किसी को भी अजय के पापा के मरने का दुःख नहीं ?

उसने चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ाई है- मजे में हवा चल रही है और पेड़-पौधे झूम रहे हैं... गमलों और क्यारियों के पौधों में रंग-बिरंगे फूल खिले हुए मुस्करा रहे हैं... पक्षी पहले की तरह चहचहाते उड़ रहे हैं... तमाम बच्चे खेल-कूद रहे हैं... सभी स्कूल-टीचर्स नॉर्मल हैं, यहां तक कि उसे अपनी मम्मी के चेहरे पर भी कोई दुःख महसूस नहीं हुआ है.

लेकिन पापा...!

पिछले साल कितना रोये थे उसके पापा दादी मां के मरने पर !... मम्मी भी रोयी थीं. वह खुद भी तो !

मम्मी से पूछने पर मम्मी ने बताया था कि मर कर कोई वापस नहीं लौटता. दादी मां भी नहीं. पापा इसीलिए रोये थे. ...तो अजय के पापा भी अब कभी नहीं लौटेंगे इसलिए अजय की मम्मी रोयी होंगी... अजय भी !

घर की बालकनी में अकेले खड़ी उस नन्हीं लड़की की नन्हीं कल्पना अदृश्य आंसुओं की परछाइयों से भीग उठी है !

उसे जैसे एक करुण-विलाप ने घेर रखा है !

फिर जहां तक उसकी दृष्टि जाती है, उसे लगता है सब कुछ एक गीलेपन से तर है... तमाम घर... दीवारें... फर्श... सड़कें... पेड़ पौधे... फूल-पत्ते... आसमान... बादल... धूप-छांव...

सहसा उसकी कल्पना भंग हो जाती है.

लगा कि पापा का स्वर है...

दौड़ कर वह कमरे में जा पहुंची है...

"अरे ! मेरी रानी बिट्टिया ऽ... !"

पापा ने लपक कर उसे गोद में भर लिया है.

पल-भर को वह सब कुछ भूल कर पापा के नेह-स्पर्श में जा दुबकी है ! दुनिया की तमाम खुशियां जैसे आ कर उससे लिपट गयी हैं. उसकी आंखों की कोर से आंसू उमड़ आये हैं...

"रोती क्यों है मेरी प्यारी छुनी-मूनी ? मम्मी ने कुछ कहा ?"

पापा ने शरारती स्वर में पूछा है. वह कस कर उनसे लिपट गयी है.

मम्मी सूचना देती हैं - "बेचारी सेंटीमेंटल हुई जा रही है अजय के पापा की सुनकर..."

"क्या हुआ उसे ?"

"मर्डर !"

"ओह !"

पापा के स्वर में गहरा अफ़सोस और बेचैनी है.

उसे लगा, पापा का गला जैसे रुंध गया हो... आंखें उमड़ आयी हों.

बस... अब रो ही दें !

"बहुत समझाया था, गुंडों के खिलाफ मुंह मत खोलना. पर सच्चाई का भूत सवार था. खो दी लाइफ ! यही होता है ऐसे बेवकूफों का."

पापा का स्वर सहज है... बस, एक मामूली-सी खीझ है. लेकिन वह सब कुछ कहीं भी नहीं, जो उसकी मासूम कल्पना में था !

किंतु... 'बेवकूफ' शब्द पर वह चौंक उठी है ! तो क्या सच में अजय के पापा बेवकूफ ही थे ?

पापा झूठ तो नहीं कह सकते.

लेकिन क्यों थे बेवकूफ ?

पापा से पूछेगी वह.

सहसा पापा का स्वर पूरी तरह बदल चुका है...

"चलो, जो होता है ठीक ही होता है. मेरा नंबर उसके बाद था. साल भर लगता कि दो साल, अब उसकी डेथ के बाद मेरा प्रमोशन तय है !"

अब पापा की टोन से दुःख व अफसोस पूरी तरह गायब हो चुके हैं.

मम्मी भी चहक उठी हैं - "अरे सचमुच ! वह तो आपके ऑफिस में ही था."

कहीं कोई पीड़ा नहीं है. कसक नहीं है. आंसू नहीं हैं.

वह पापा के भीतर जिस दुःख को महसूस करना चाहती थी, उस ज़गह खुशी की आहट पा कर विचलित हो उठी है. और पापा उसे गोद में उठाये झूम रहे हैं...

वे उत्साहपूर्वक मम्मी को उनके लिए लायी साड़ी दिखाने लगे हैं...

उसके लिए भी एक सुंदर-सी मासूम गुड़िया लायी गयी है...

लेकिन उसके अपने भीतर आ खड़ा हुआ है अजय का आंसुओं भरा चेहरा !

बग़ैर पापा का अजय !

उसके पापा को निहारता हुआ अजय !

लेकिन पापा... उन्हें किसी की परवाह नहीं.

एक गहरी उदासी उसे भिगो दे रही है.

वह एक सुख का एहसास करना चाहती है - पापा... अपने पापा के स्पर्श के सुख का. लेकिन कुछ ऐसा है जो उसे उसके अपने पापा से दूर धकेले दे रहा है.

वह ऐसा नहीं चाहती और कस कर उनसे लिपट जाना चाहती है...

पर ऐसा हो नहीं पाता !

क्यों ?... यह उसकी मासूम समझ से एकदम परे है.

१९४/१० सोलानी कुंज, आई. आई. टी., रुड़की २४७ ६६७ (उत्तरांचल)

कहानी

कल का मोर्चा

कल फिर तारीख़ है. 'तारीख' का ख़याल आते ही सिंह साहब सिहर उठते हैं. उनकी बोटी-बोटी लक्ष्मण झूला होने लगती है, सर्द हवाओं के स्पर्श से. यह जानलेवा हवा सिंह साहब को उनकी पड़ोसन-सी लगती है, जो प्रायः उन्हें परेशान और आतंकित किये रहती है, अपनी रोज़मर्रा की हरकतों से.

फरवरी की जाती-जाती सर्दी ने यकायक नागिन की तरह पलटकर फुफकारा है. हाड़ कंपा देने वाली शीत लहर आज भुरारे (सुबह तड़के) से ही भर्रा रही है. लगता है किसी शीतगृह का कोई कपाट खोल दिया गया हो और बर्फीले झोंके स्कूल से छुट्टी की घंटी सुनकर भागते बच्चों की भांति निकल पड़े हों.

निम्न-रक्तचाप के मरीज सिंह साहब को न तो शीत सह्य है और न अधिक ताप. सच तो यह है कि सेना से सेवानिवृत्त सिंह साहब को इस सत्तावन वर्ष की उम्र में कुछ भी असामान्य, असह्य और प्रतिकूल लगता है.

सिंह साहब को सामान्य रहना पसंद है. उन्हें सामान्य लोग प्रिय हैं. साधारण और गुनगुना मौसम प्रिय है. इसी कारण अभी जब दस बज चुके हैं और धूप बिखर गयी है पूरी तरह, तो भी सिंह साहब कमरे में चारपाई पर रजाई ओढ़े चुप लेटे हैं. यहां उन्हें शीत लहर का ख़तरा नहीं लगता. शायद अब और आज से वे कमरे से बाहर आकर चबूतरे पर अपनी फुलवारी में बैठेंगे भी नहीं. इस सर्द हवा ने उन्हें नज़र बंद ही नहीं, 'बिस्तर बंद' भी बना दिया है. वे गुड़ीमुड़ी गठरी बने सिर तक रजाई ओढ़े चुप पड़े हैं.

लेटे ही लेटे, जब उन्हें कल आने वाली तारीख़ का ख़याल आता है, तो वे तड़प उठते हैं. बिच्छू का डंक सा चुभ जाता है. वे विवश होकर अंदर ही अंदर असहनीय पीड़ा से व्यथित होकर करवट बदल लेते हैं. परंतु कितनी करवटें बदलें. उनकी तो रीढ़ की हड्डी भी विकट पीड़ा देती है. इसी रीढ़ में चोट लगने के कारण वे मेडिकली अनफिट करार दिये जाने पर सेना में हवलदारी के पद से अपनी सेवाएं समाप्त कर घर आने के लिए विवश हो गये थे.

सिंह साहब धीरे-से रजाई पैरों की ओर सरकाकर ऊपर अपना सिर बाहर निकालते हैं. सामने दरवाज़े की चौखट पर दीवार से अपना सिर टिकाये उनकी पत्नी यशोधरा बैठी है. सिंह साहब अपनी पत्नी को पुकारकर चाय के लिए कहना चाहते हैं. फिर चुप रह जाते हैं.

कल दोपहर को यशोधरा ने कहा था, "दूध का बिल आ गया है. डेढ़ सौ रुपये देने हैं."

"मुझे निचोड़कर दे-दो." तब ज़वाब में सिंह साहब खीखिया पड़े थे.

यशोधरा चुप होकर रह गयी थी. सिंह साहब उस समय न जाने किन फाइलों, कतरनों और पत्रों में गुंथे पड़े थे. वे भी तब ख़ामोश हुए फाइलों और कतरनों में स्वयं को उलझाये रहे थे. वास्तव में, जब वे उद्वेलित और परेशान होते हैं, तब स्वयं को ऐसे ही फाइलों, नक्शों और कतरनों में डुबो देते हैं. फाइलों और कतरनों में उनका अतीत और इतिहास है. इन्हें वे अपनी जान से ज्यादा चाहते हैं.

पुष्कर द्विवेदी

सिंह साहब की इन फाइलों में अब एक फाइल और आ गयी है - निर्मला की फाइल. पिछले वर्ष से आयी इस फाइल ने सिंह साहब सहित पूरे घर को ही सर्वाधिक बेचैनी और खामोशी प्रदान की है. जब वे निर्मला की फाइल खोल लेते हैं, तब लगता है जैसे सिंह साहब ने खामोशी की चौपड़ बिछा दी हो. वे अकेले ही उस चौपड़ पर अपनी चालें सोचते और चलते रहते हैं. उस समय घर में खामोशी का कोहरा छा जाता है. ऐसे में लगता है जैसे घर एक विशाल शिला हो और जिसके नीचे वह स्वयं दब गया हो.

ऐसे में यशोधरा घर के दरवाज़े पर चौखट से सटकर बैठी रहती है. वह यहां बैठी-बैठी या तो निरवंशी कटहल के पेड़ को निहारती रहती अथवा फिर बेरिया के पेड़ पर लटकी जोंजों (बया पक्षी के घोसले) को ताकती रहती है. छोटी छोटी बयाओं के टोल 'फुर्र-फुर्र' करते दिन भर इधर से उधर उड़ते रहते हैं. यशोधरा को यह देखना अच्छा लगता है. इन बयाओं की फुर्र-फुर्र में ख़ामोशी का एक भयानक खौफ हावी रहता है.

सिंह साहब चाय की तलब महसूस करते हैं. परंतु वे चुप रहते हैं. क्या पता इस समय घर में दूध हो या नहीं हो. अभी दूधवाला ग्यारह बजे से पहले आने वाला नहीं. सुबह-सुबह एकदम तड़के वह एक चाय पी ही चुके हैं. यशोधरा ने शाम का दूध बचा लिया था. उसे पता है कि सुबह चाय पिये बिना उन्हें हाजत नहीं होती.

तभी निर्मला न जाने कहां से आकर अपनी मां यशोधरा के पास ही बैठ जाती है. निर्मला यहीं कॉलोनी में नीलू के घर तक गयी होगी. नीलू सहेली है उसकी.

निर्मला को देखते ही सिंह साहब अत्याधिक भावुक होकर दुखी हो उठते हैं. बेचारी परित्यक्ता. पिछले डेढ़ वर्ष से वह यहां अपनी व्यथा लिए मां के पास पड़ी है. दोनों मां-बेटी कहने को बाहर दरवाज़े पर बैठकर दुनियां से तादात्म्य स्थापित कर प्रसन्नता सहेजने का पूरा प्रयास करती हैं, परंतु बाहर की दुनियां जब उन दोनों के अंदर की दुनियां से अलग-अलग टकराती है, तो मां-बेटी दोनों घायल हो जाती हैं.

उस समय भी यही होता है. यशोधरा बया के घोंसले पर एक काले कौये को धावा बोलते देखती है. कौआ चोंच मारने लगता है. तभी वह चिल्ला पड़ती है- "निम्मो, कौये को पत्थर मार... वो देख घोंसले को गिरा रहा है."

निर्मला लपककर पत्थर उठाती है और कौये को उड़ा देती है.

"बड़ा दुष्ट कौआ है. अभी फिर आयेगा घर उजाड़ने." यशोधरा अपनी बाइस वर्षीया पुत्री निर्मला से कहती है, "निम्मो, देखे रहना."

फिर देखते ही देखते निर्मला उदासी के अरण्य में भटक जाती है. उसका भी तो घर था, जो एक कौये ने उजाड़ दिया. यह कौआ स्वयं उसके घर का रखवाला था, समाज की दृष्टि में. जिस घर में वह बड़ी आशाएं और कामनाएं लेकर डोली में बैठकर गयी थी, एक दिन उसे वहां से कितना अपमानित होकर आना पड़ा था. सब कुछ दिया था उसके पिता ने अपनी सामर्थ्य भर, परंतु दहेज के लालची दानवों ने निर्मला को कितना सताया, मारा-पीटा, कई-कई दिन भूखा रखा. इस पर भी वह जब अपने पिता से कुछ न मांग सकी, तो उसे मार-पीटकर घर से निकाल दिया.

निर्मला का मन सब कुछ सोचकर दुखी ही होता है. उसका पति कितना लालची, कठोर और कापुरुष ही नहीं, बदमाश और धूर्त भी निकला. एकदम खलनायक. जब वह मार खाकर अपने घर आयी तो उसके पापा सिंह साहब ने उसे कभी फिर से ससुराल न जाने की हिदायत दी. इसी में निर्मला को भी अपनी भलाई और सुरक्षा दिखाई दी.

तभी एक दिन उसका पति अमर उसे जबरन लेने आया. उस समय उसके पापा और मां पड़ोस में होने वाली 'कथा' में गये थे. अमर ने निर्मला से जोर-जबर करके गालियां दीं और उसके गले का हार खींच लिया, जो निर्मला को उसके बाबा ने दिया था. निर्मला ने अमर का हाथ कसकर पकड़ लिया था. इस पर क्रुद्ध होकर अमर ने निर्मला को धकेला. वह बक्से के किनारे से जा टकराई, तो उसके सिर पर बक्से की चोट लगने से खून बह निकला था. खून देखकर अमर भाग खड़ा हुआ था.

निर्मला की चीख सुनकर बगल वाले अग्रवाल और फिर उसके पापा भी मां के साथ आ गये थे. अमर की इस गुंडागर्दी और जबरदस्ती के साथ लूटमार की रिपोर्ट पुलिस थाने में लिखाने के बाद दूसरे दिन ही सिंह साहब ने तलाक और गुजाराभत्ता का

३० अगस्त १९५०,

बी. ए. एल. बी., एयर कंडीशनिंग में डिप्लोमा, पत्रकारिता में डिप्लोमा

लेखन : सभी विधाओं में, मूलतः कहानी लेखक. देश की अनेक पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित.

प्रकाशन : 'अतीत होता भविष्य', 'सबसे बड़ी पूंजी' (लघु कथा संग्रह), 'प्रतिनिधि बाल कहानियां' (संग्रह), 'कलियुग' (कहानी-संग्रह) व कुछ पुस्तकें प्रकाशनाधीन.

संपादन : 'कथाघाट' (त्रैमासिक), 'दिशाएं' (कहानी-संग्रह), 'ढला एक दिन और' (काव्य संग्रह), कुछ स्थानीय समाचार-पत्रों से भी संबद्ध.

पुरस्कार : 'पलाश कहानी प्रतियोगिता', 'गार्गी संस्थान' (लखनऊ); 'गृहलक्ष्मी' द्वारा 'श्रेष्ठ कहानीकार' का सम्मान, उत्तर प्रदेश व उड़ीसा के राज्यपालों द्वारा सम्मानित.

विशेष : लघुकथाओं पर अंतर्राज्यीय विद्यालयों के छात्रों द्वारा शोध कार्य, राष्ट्रीय प्रसारण हेतु 'रिश्ते' धारावाहिक के लिए कहानी का चयन.

संप्रति : एक स्थानीय दैनिक में संपादन कार्य.

मुकदमा भी अमर और उसके माता-पिता पर चलाकर दहेज मांगने का केस भी खोल दिया.

अदालत में जाते ही अमर ने वास्तव में अपना खलनायकी स्वरूप दिखाया. और उसी के बाद अमर की धमकियां तथा निर्मला का अपहरण कर मार डालने के संदेश सिंह साहब के पास आने लगे थे. मुकदमा वापस लेने के लिए साम-दाम-दंड-भेद के तरीके अमर द्वारा अपनाये गये. एक बार तो 'कट्टे' से फायर भी किया गया मगर वे बाल-बाल बच गये. बाजार आते-जाते निर्मला के साथ गुंडों द्वारा छेड़छाड़ और अपहरण कराने के पूर्ण असफल प्रयास अमर ने कराकर अपनी छवि किसी राक्षस से भी गयी गुज़री बना ली. हर बार असफलता हाथ लगने पर अमर एकदम बौखला गया था.

निर्मला की शादी शहर की शहर में होने से आये दिन तनावपूर्ण स्थिति और असुरक्षा का वातावरण बना रहता है. फिर

जिस दिन तारीख पड़ती है अदालत में, उसके पूर्व और उस दिन जब तक 'तारीख' नहीं हो जाती, सिंह साहब पूरे परिवार सहित मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक रूप से पीड़ित और आतंकित रहते हैं. तारीख़ कर लेना उनके लिए सचमुच ही एक आग की नदी पार कर लेना होता है.

सिंह साहब के सामने निर्मला हर समय एक जटिल समस्या के रूप में उपस्थित रहती है. उसका वर्तमान और भविष्य सिंह साहब की आंखों में किरकिरी बना हुआ है. उन्हें रात-रात भर नींद नहीं आती है. जिसकी जवान, सुंदर और निर्दोष बेटी मात्र दहेज लोभी दानवों द्वारा परित्यक्त करने के बावजूद भी आतंकित, पीड़ित और दंडित की जा रही हो, उस बाप को नींद भला आ भी कैसे सकती है ?

अब कल फिर तारीख़ है. कल अदालत में साक्ष्य होना है, निर्मला की तरफ से. कल 'साक्षियां' जुटाना है. वकील के पास भी जाना है, और सबसे बड़ी समस्या सुरक्षा प्रबंध और तारीख़ पर होने वाले ज़रूरी खर्चे की व्यवस्था करने की है.

जब तारीख़ आती है, तब अकेले सिंह साहब ही चिंताग्रस्त नहीं हो जाते, यशोधरा और निर्मला भी फिकरमंद हो जाती हैं.

"अरे सुनो." सिंह साहब यशोधरा को बुलाते हुए उठकर बैठ जाते हैं.

लेकिन आवाज़ कंठ में ही फंसकर रह जाती है. वह तब खांसकर निर्मला को आवाज़ देते हैं, "निम्मो."

"क्या है ?" यशोधरा आवाज सुनकर आ जाती है.

जब भी निर्मला को पुकारो, तो यशोधरा प्रकट हो जाती है. शादी के बाद जब बच्चे हो जाते हैं, तो पत्नी शायद बच्चे या बच्चों में रूपांतरित हो जाती है या बच्चे पत्नी में. सिंह साहब सोचते हैं कि बच्चे का नाम पुकारे जाने पर बच्चे की मां आ जाती है ? पत्नी को बुलाने की ज़गह बच्चे को ही या बच्चे के माध्यम से ही पत्नी को क्यों बुलाया जाता है ? वह जाने क्यों आज तक इस विषय और प्रश्न का हल ठीक से पा नहीं सके और न ही इस समय.

"निम्मो क्या कर रही है बाहर ?" वे पत्नी से पूछते हैं.

सुई की तरह यह प्रश्न निर्मला के कानों में चुभता है. पापा को अधिक देर अकेला बाहर खड़ा होना या बैठना कतई पसंद नहीं, यह वह जानती है. वह अपने दुखद अतीत को झटककर म्लानमुख लिये अंदर आ जाती है -

"क्या है पापा ?" पापा निर्मला का म्लानमुख देखकर यूं ही सकुचा जाते हैं, जैसे उसकी इस गर्दिश के जिम्मेदार वे स्वयं हों. परंतु वे इन सब बातों और एहसासों को परे ढकेल मुस्कराकर कहते हैं - "जरा एक कप चाय अदरक डालकर बना दे, बिना दूध के."

"दूध वाले को ही देख रही थी पापा..." अब जैसे निर्मला अपने बाहर खड़े होने का स्पष्टीकरण स्वतः पा जाती है.

तभी बाहर दूधवाले की सायकिल की घंटी टनटना उठती है.

"यह लो पापा..." निर्मला मुस्कराकर दूध लेने भागती है.

निर्मला के चेहरे पर उभर आयी मुस्कराहट सिंह साहब के मन को एक ताज़गी का एहसास करा देती है. वे निर्मला के मुकदमे वाली फाइलें उठा लेते हैं. कल तो गुज़ारे भत्ते या मेंटीनेंस की तारीख़ है. वे फाइल देखने लगते हैं.

❐

आज अभी तक राजू नहीं आया है. यकायक सिंह साहब फाइल में काग़ज पलटते-पलटते सोचते हैं. राजू कल कह गया था कि आज ग्यारह बजे तक 'इंतजाम' के साथ आ जायेगा. पर ग्यारह तो बज गये हैं और वह अभी तक नहीं आया है. राजू सिंह साहब के एक परिचित का लड़का है. वह प्रायः आता रहता है. सिंह साहब के लिए बड़ा भरोसे का और मददगार लड़का है. पता नहीं क्यों वह अभी तक नहीं आया ? क्या पता 'इंतज़ाम' न हुआ हो. जाने क्या बात है ?

चाहते तो नहीं थे सिंह साहब, लेकिन अब यह कदम उठाना बहुत आवश्यक हो गया है. पानी सिर से ऊपर जा चुका है. अमर की धमकियां और उसके गुंडों की हरकतें अब सहनशक्ति से परे हो गयी हैं. आख़िर ऐसे कब तक चुप रहा जायेगा ? अमर की बदतमीजियां और गुंडागर्दी सिंह साहब की मान प्रतिष्ठा को धूमिल कर जान की ग्राहक बन गयी है, वह सिंह साहब को कायर और अशक्त समझ बैठा है.

असल में सिंह साहब एक फौजी रहे हैं. अनुशासनप्रिय. वे कोई ग़लत कदम उठाकर कानून और प्रशासन को अपने हाथों में नहीं लेना चाहते. वे थोड़ा अमर पर रहम भी खाते थे. उन्होंने कई दफ़ा अपने स्तर पर उसे समझाया भी था, मगर वह नहीं माना. पता तभी चला था कि वह दुश्चरित्र भी है. ख़ैर... जब उससे संबंध विच्छेद हो गया तो उसके चरित्र से क्या ?

मगर उस दिन तो हद हो गयी जब उसने दिन-दहाड़े कचहरी में निर्मला को भद्दी गाली देकर उसका हाथ पकड़कर घसीटना शुरू किया. उसे सिंह साहब की उपस्थिति का ज़रा भी ख़ौफ न रहा. उस समय अमर के साथ दो गुंडे बंदूक लिये थे और अमर निर्मला को बयान न देने के लिए बाध्य करना चाह रहा था. उस समय तक अदालत में 'पुकार' नहीं हुई थी.

सिंह साहब तब लोहे का डंडा, जिसे वे बाहर जाते समय हाथ में लिये रहते, लेकर अमर की ओर भागे, तो घबराकर अमर भाग खड़ा हुआ था. अमर ने इस प्रतिरोध के प्रति सोचा भी न होगा. वह सोचता रहा होगा कि उसके चमचों व बंदूकचियों के प्रदर्शन से सिंह साहब ख़ौफ खाये रहेंगे. मगर सिंह साहब की कड़कदार फौजी आवाज़ ने बंदूकचियों को भी रफूचक्कर कर दिया था - "कौन साला हरामी... हिटलर की औलाद है.... ठहर जा पस्त पौरूष पुरूष की कायर छिपकली संतान."

फिर कचहरी की तमाम भीड़ के जमा होने से अमर और

उसके साथी भाग गये थे. उस दिन मुकदमा अमर की तरफ से उसकी अदमपैरवी में उसके विरुद्ध हो गया था. 'अदालत' को सारी घटना भी पता चली, तो 'साहब' ने एकतरफा आदेश में तारीख़ डाल दी थी.

यद्यपि सिंह साहब और स्वयं 'साहब' जानते थे कि अगली तारीख पर मुकदमा पुनः नंबर पर लाने की प्रार्थना अमर की ओर से वकील द्वारा की जायेगी, तो भी उस दिन यह सब होना भी सिंह साहब के पक्ष में था ही. साथ ही अदालत की सहानभूति भी. इससे सिंह साहब को बड़ी राहत मिली थी कि 'साहब' के हृदय में उनकी छवि अच्छी बनी.

बस तभी से सिंह साहब ने निश्चित कर लिया कि कुछ न कुछ 'इंतजाम' करना चाहिए. पुलिस, रिपोर्ट, नेता कोई समय पर साथ नहीं आते. अदालत तो अदालत है. सौ छेद हैं कानून में. वास्तव में सामर्थ्यवान के सब साथी होते हैं.

अमर का मामा शहर कोतवाली का इंचार्ज है, सो सिंह साहब की किसी रिपोर्ट का प्रभाव नहीं होता. अधिकारी और उच्च अधिकारी आश्वासन के सिवाय कुछ नहीं दे पाये हैं अभी तक. बड़े अधिकारी तो आदेश करते हैं नीचे, और नीचे अमर के नोटों की ऊंचाई आदेश को बौना बना देती है यानी कि अमर, अमर प्रतीत होता है. लेकिन अब सिंह साहब ने भी फैसला कर लिया है कि भविष्य में या कल की तारीख़ पर यदि कोई गड़बड़ी हुई तथा गैरकानूनी कदम अमर की ओर से उठया गया, तो अमर का पूरी शक्ति व युक्ति से प्रतिरोध करेंगे. आख़िर उन्हें भी आत्मरक्षा का अधिकार है और वे अपनी सुरक्षा आप कर सकते हैं. फौज में उन्होंने दुश्मन पर आक्रमण करना भी सीखा है और आत्मरक्षा करना भी.

बस यही सब विचार कर उन्होंने राजू से कहा था कि किसी हथियार का इंतजाम करके ले आना या फिर दो-चार हथगोलों का. अमर के किराये के गुंडों और उसके कुकृत्यों से बचाव एवं मुठभेड़ करना आवश्यक हो गया है. इस देश में पुलिस और व्यवस्था तब तक एक्शन में नहीं आती जब तक कुछ अप्रिय घटित नहीं हो जाता. साला सुअरतंत्र है. सब बेहूदे हैं. वे यकायक उबलने लगते हैं.

"देखो पत्ती खूब उबल जाय, पापा को ख़राब चाय पसंद नहीं." निर्मला अपनी मां से कहती हुई शायद बर्तन धोने चली जाती है.

तभी दरवाज़े पर मोटर-सायकिल आकर रुकती है. राजू होगा. सिंह साहब उठकर पूरी तरह बैठ जाते हैं. फाइलें एक ओर सरकाते हैं.

राजू को सामने पाकर वे सचमुच प्रसन्न एवं आश्वस्त हो जाते हैं. राजू स्वयं भी धक्कड़ और कड़ियल छब्बीस-सत्ताइस वर्षीय, सुदर्शनीय पौने छह फुटा नौजवान है. इसे फौज का कोई एक अफसर होना चाहिए था. सिंह साहब सोचकर सिर झटकते हैं - ऊंह !

"आओ-आओ, देर कर दी." सिंह साहब कहते हैं,

"सर्दी कितनी पड़ रही है." वह मुस्कराता है.

"एक कप चाय और लाना." सिंह साहब आवाज़ देते हैं - "राजू भी आ गया है."

"राजू भी आ गया है", सुनकर निर्मला उमंग से भरकर बाहर की ओर दौड़ती है. कमरे में आकर खड़ी हो जाती है. वह मुस्कराकर राजू की ओर देखती है. तेज सांसों के कारण निर्मला का वक्षस्थल ऊपर-नीचे देख राजू दौड़कर आयी निर्मला की ओर कुछ झेंपकर देखता है.

सिंह साहब निर्मला की ओर कुछ अजीब भाव से देखते हैं. फिर पूछते हैं -"चाय बन गयी ? राजू की चाय कहां है ?"

"हां पापा !" कहकर निर्मला तुरंत हड़बड़ाकर अंदर भाग जाती है.

सिंह साहब एक क्षण चुप रहते हैं. फिर राजू से पूछते हैं- "इंतजाम हुआ ?"

"मामला टनाटन है. एकदम फिट."

"वेरी गुड." सिंह साहब सहसा तनावमुक्त होकर कहते हैं- "सुनो राजू, तुम भी साथ रहना."

"हां-हां, कल छह लड़के और भी मेरे साथ रहेंगे."

इतना आश्वासन एवं विश्वास पाकर सिंह साहब कल का मोर्चा फतह करने का पूरा संकल्प मन ही मन करके प्रसन्न दिखने लगते हैं. हुंह. शांति और चैन से 'तारीख' करना भी एक किला फतह करना जैसा हो गया है. वाह जमाने वाह!

यकायक उनके मन में एक सुखद खयाल आता है कि 'तारीख़' से निवृत्ति पाकर वे क्यों न राजू से निर्मला के लिए बात चलायें ? राजू निर्मला को पसंद करता है और निर्मला भी राजू के प्रति कभी-कभी आकृष्ट दिखाई देती है. यह सब सिंह साहब से छिपा नहीं है. पर ऊंह... देखा जायेगा आगे.

निर्मला चाय रख जाती है.

सिंह साहब अपने सिर को झटककर सहज हो जाते हैं. मगर निर्मला ने चाय रखते हुए जैसे पापा के मन की बात भांप ली है. वह राजू के चेहरे की ओर देखती और सोचने लगती है - क्या सचमुच चीज़ें इतनी आसान हो जायेंगी, जितनी पापा को नज़र आती हैं ?

अकुलाकर दरवाज़े खटखटाती शीत लहर से निर्मला का शरीर सिहर उठता है. मन कांपने लगता है. लेकिन सिंह साहब इस शीत लहर से अब कतई आतंकित नहीं होते हैं. न जाने कहां से उनके शरीर में ऊर्जा का संचार होने लगता है. वे मुस्कराते-से चाय सिप करते हुए राजू से कल के लिए प्रोग्राम बनाने लगे हैं और सोच रहे हैं कि शीत लहर का प्रकोप बहुत संभव है कल तक समाप्त हो जाये.

इधर खड़ी-खड़ी निर्मला सोचने लगती है कि कल कौन जाने शीत लहर का प्रकोप कैसा और कितना हो ? और मौसम कितना अनुकूल या प्रतिकूल हो ?

✉ कल्पना नगर, सिविल लाइन्स, इटावा-२०६ ००१.

कहानी

लखमी संग सत्तरह घंटे

"भाई साहब, बस पिथौरा कितने बजे लगेगी... !" नितिन ने निकट बैठे व्यक्ति की ओर निगाह घुमायी.

ज़वाब देने की बजाय हंसते हुए उसने पहले अपने साथी को कोहनी से टल्ला मारा. फिर नितिन की ओर मुखातिब होकर बोला - "दिखते तो ऊंची किताबें पढ़े हुए हो, पर बाबूजी बस में बैठने से पेले इत्ता तो हम भी तलाश कर लेते हैं कि, वह कहां जा रही है पर तुमने तो इत्ता भी नहीं किया... !"

उजड्ड दिखने वाले धोतीधारी द्वारा व्यंगात्मक-लहजे में की गयी टिप्पणी के कारण अचानक घुमड़ आये क्रोध को संयत करते हुए वह कुछ कहना ही चाह रहा था कि, उसके साथी ने विनम्रता का परिचय देते हुए क़ैफियत दी - "बाबूजी, बुरा मत मानना, हम तो यूंज मजे-मजे में हंस रहे थे. यह गाड़ी बाबूजी पिथौरा नहीं, बालीपुर जा रही है. बीच में सीतावन आयेगा तुम तो वहां उतर जाना, वां से पिथौरा के लिए कुछ न कुछ साधन मिल जायेगा. फेल नी हुई तो एक बस भी है. समझ गये ना बाबूजी..." और क़ैफियत देने का फर्ज अदा कर वह अपने साथी से खेत-खलिहान से संबंधित किसी विषय पर बतियाने लगा.

क्या मुसीबत है ? उसने सीट से सिर टिकाकर ब्रीफकेस को व्यवस्थित किया तथा मन को शांत करने के लिए आंखें मूंद लीं.

❒

बी एंड डी - यानी बोरिंग एंड डीपनिंग ऑफ वेल्स कंपनी उसने जबसे ज्वाइन की है ज़िंदगी भी पत्थर-फोड़ जैसी चुनौतीपूर्ण हो गयी. पूरा ऑफिस मेंटेनेंस और जब-तब किसी भी साइट का सरप्राइज-इन्स्पेक्शन. जिस कंपनी के ऑफिस में आज रौनक ही रौनक है, कहते हैं वहां कि कभी धूल तक नहीं झड़ती थी. और इसका श्रेय मैनजमेंट इंद्र देवता को देता है. दरअसल अनावृष्टि के कारण जैसे-जैसे जल का भूस्तर कम होता गया कंपनी का कारोबार बढ़ता गया. देखते ही देखते पांच का स्टाफ पांच सौ में बदल गया. ऑपरेटर, ड्रिलर, हेल्पर, मेट, ड्रायवर, मैकेनिक, टेक्निकल सुपरवाइजर और न जाने कौन-कौन सी कौड़ी-कुटार फौज. लंबे-चौड़े परिसर में फैला बड़ा-सा वर्कशाप और उसमें जहां निग़ाह पहुंचाओ वहीं ड्रिलिंग-बोरिंग मशीनें, ट्रैक्टर-ट्राली, एक्सप्लोसिव-वैन और न जाने क्या-क्या ?

बोरिंग में उतनी रिस्क नहीं होती जितनी डीपनिंग में. सूखे कुएं में ड्रिल कर गहरा छेद करना, उसमें सूखी बारूद या जिलेटिन लगाकर डिटोनेटर फिट कर, वायर से जोड़ना तथा निश्चित दूरी से ब्लास्ट करना. कभी-कभी तो इतनी "सक्सेसफुल ब्लास्टिंग" होती है कि भयंकर विस्फोट के साथ पत्थर उड़कर निश्चित निषेध एरिया से भी दूर जा गिरता है, ऐसी स्थिति में प्रायः भयंकर दुर्घटना घटित हो जाया करती है. कुछ ऐसा ही पिथौरा-साइट पर घटित हो गया.

डॉ. सतीश दुबे

कंपनी को चार-दिन बाद जैसे ही रिपोर्ट मिली, संचालक हिंदुजा ने उसे तलब कर पूरे वाकिये की जानकारी देते हुए अनुनय आदेश दिया- "गुप्ता, जैसे-तैसे आप ही इस केस को रफा-दफा करवा सकते हैं. ऑपरेटर केदारनाथ ने साइट के चौकीदार को जिसके दस वर्षीय लड़के की पत्थर सिर पर गिरने से मौत हो गयी है बरगलाने वाले लोगों से बचाकर अपनी निगरानी में रखा है. कोर्ट केस हुआ तो सजा-जुर्माना तो होगा ही, कंपनी बदनाम होगी सो अलग. आपको ख्याल होगा, एक केस में पहले भी हम लाखों का गच्चा खा चुके हैं. बीसेक हजार का ड्राफ्ट ले लो, और जो पहली गाड़ी मिले निकल जाओ. अपनी तो दोनों जीपें और वैन तीन दिनों से बाहर हैं..."

और आदेश तामिली के चक्कर ने नितिन गुप्ता को इस ग्रामीण इलाके के बस-चक्कर में फंसा दिया.

❒

"बाबू साहब, आपका सीतावन आ गया." नितिन के निकट बैठा व्यक्ति उसे झकझोर रहा था. उसने उसे धन्यवाद की मुद्रा में देखा तथा ग्रामीण-इलाके में चलने वाली निजी बसों में होने वाली धक्कमपेल का मुकाबला करते हुए नीचे उतर पड़ा.

उसने देखा वृक्षों की इस भूमि के बीच सीतावन को, जो पहाड़ी पर छितरे हुए धब्बेनुमा कुछ रहवासी मकानों के रूप में बसा हुआ था. सड़क के किनारे बस-स्टैंड कहलाने वाली एक छोटी सी पट्टी थी जिसे चार छः मकानों ने हलचल से भर दिया था. पैसेंजरों की आमद-रफ़्त के कारण चाय की कुछ दुकानें दिखाई दे रही थीं. लकड़ी और मिट्टी से बनी टेबलों पर चाय बनाने का सामान तथा नाश्ते के रूप में कुरमुरे रखे थे और हर टेबल पर सेवा के लिए तत्पर थीं अंगीठी के कोयलों को पंखों से हवा करती महिलाएं. कपड़े से बंधा सिर, लंबा सा लहंगा, किसी ने साड़ी पहन रखी थी तो किसी ने लंबा सा कुरता.

नितिन पूरे परिदृश्य पर सरसरी निगाह डालकर एक घने वृक्ष के नीचे बने चबूतरे पर बैठ गया.

"दादू, चा पियोगे..." उसने देखा गठीला बदन तथा आकर्षक चेहरे वाली गौरवर्णी महिला उसकी ओर देखकर मुस्कुरा रही है. उसने आंतरिक खुशी का इज़हार करते हुए कहा - "चलेगी..." दरअसल इस वातावरण ने बोरियत से राहत देकर उसमें ताज़गी भर दी थी.

कुछ ही मिनटों में चाय का कट ग्लास उसके हाथ में था. हर चुस्की में उसे नया स्वाद आ रहा था. चाय, गटकने के बाद एकदम आ गयी फुर्ती, उसे चहल-कदमी के लिए प्रेरित करने लगी. एक हाथ में ब्रीफकेस, दूसरे में ग्लास लटकाकर वह चायवाली तक पहुंचा. ग्लास टेबल पर रखकर पर्स में से पांच का नोट उसकी ओर बढ़ाया- "इत्ता" वह उसकी ओर देखकर मुस्कुरा रही थी.

"चलेगा... रख लो..."

कुछ देर इधर-उधर चहल-कदमी कर, कुछ लोगों से बतियाते हुए इस क्षेत्र की जानकारी लेते हुए वह फिर चबूतरे पर आकर बैठ गया. सामने वे ही वृक्ष न जाने किस-किस किस्म के, अरे! यह गीलापन कैसा ? अचानक उसका ध्यान-भंग हुआ. हुंऽ... हुंऽ तो किसी पक्षी ने बीट कर दी है. कौन सा पक्षी होगा, उसने ऊपर की ओर निगाह उठायी. पक्षी तो दिखा नहीं, पर वृक्ष को उसने पहचाना, यह तो पीपल का है. इस पीपल से तो वह बचपन से जुड़ा रहा है. वृक्ष के तने को छूकर उसने नमन किया तथा फिर बैठ गया. दादी कहा करती थीं, पीपल की जड़ में विष्णु, तने में शंकर तथा आगे के भाग में ब्रह्माजी का वास होता है. उसके हाथों में पूजा की थाली देकर, प्रति अमावस्या को वह पीपल पूजने जातीं. थाली में वैसे तो दूध, फूल, धूप, दीपक अर्पण करने के लिए होते किंतु उसके बालपन की रुचि नैवेद्य में अधिक होती. दादी कहा करतीं -बेटा ! ये बहुत पवित्र झाड़ है, सोमवती अमावस्या को इसकी प्रदक्षिणा करने से दस हजार तथा कई बार करने से करोड़ों गायों के दान करने का पुण्य मिलता है. एक दिन भावुक होकर उसने कहा था -नीतू ! बेटा, मैं मर जाऊं तो दस दिन तक, इस पेड़ में पानी डालकर मुझे पिलाना. वह मृत्यभय तथा रहस्यमय बात से आतंकित होकर उनकी ओर ताकता तो वह समझातीं -"बेटा! मैंने बताया ना यह बहुत पवित्र झाड़ है. मौत के बाद आत्मा दस दिनों तक इसी झाड़ पर रहती है, और इसमें पानी डालने से आत्मा को तृप्ति मिलती है." मृत्यु, आत्मा, तृप्ति इन सबके गूढ़-रहस्यों को वह क्या समझे. नासमझी आंखों से वह तो केवल दादी के प्यार भरे चेहरे को बस ताकता रहता.

वृक्ष पुराण की कई किवदंत-कथाओं को याद करते-करते, अचानक पिथौरा उसके मस्तिष्क में कौंध उठा... और संदर्भ-सूत्र जानने की उत्सुकता ने उसे चायवाली के पास जाकर खड़ा कर दिया. किसलय सी स्निग्ध मुस्कान फेंक अपनी टेबल पर आंखें घुमाते

प्रख्यात साहित्यकार एवं 'कथाबिंब' के हितैषी

हुए वह बोली- 'दादू, चा पियोगे, ये कुरमुरं खा लो, भौत देर से बैठे हो..."

"नहीं, कुछ नहीं, तुम तो ये बताओ, पिथौरा के लिए बस कब आयेगी..." अपनी उद्विग्नता को शब्दों में व्यक्त कर उत्सुकता भरी नज़रों से वह उसकी ओर देखने लगा. एक हाथ से टेबल पर रखा सामान उठाने तथा दूसरे से साफ करने की व्यस्तता का परिचय देते हुए, करीब पांच मिनट बाद उसने निगाह उठायी - "दादू, पिथौरा जाना है ? वो जो सड़क जा रही है वही रस्ता है, बस आयी तो वां ठहरेगी..."

"आयी तो..." का अर्थ समझने की कोशिश करते हुए, ब्रीफकेस को लहराते हुए तेज कदमों से वह उस ओर ऐसे बढ़ा, मानो बस उस रास्ते पर खड़ी हुई उसे दिख गयी हो.

बस तो नहीं पर एक मकान के निकट दूसरी चायवाली वहां ज़रूर दिख गयी. वही लकड़ी-मिट्टी से बनी टेबल, उस पर मिट्टी की अंगीठी और उसमें पड़े कोयलों को पंखे से हवा कर आग की तपन बढ़ाती वैसी ही महिला. अंतर केवल इतना कि इसने साड़ी के छोटे से टुकड़े को लहंगे में खोंसकर उसे सिर पर डाल रखा था. वह उसके पास जाकर खड़ा हो गया.

"चा पीना है दादू..." फिर वही प्रश्न. अपनी खीज को दबाते हुए उसने अपना मंतव्य प्रकट कर उसकी ओर देखा, वही एक नज़र में आकर्षित कर लेने वाला गठीला बदन, तथा लावण्य भरा चेहरा. समझ में नहीं आता, यहां ये औरतों की नुमाइश क्यों ? कहीं ऐसा तो नहीं कि, इनके घरवाले... न जाने क्यों उसके दिमाग में शंका का कीड़ा जोरों से सिलबिलाने लगा.

"पिथौरा जाओगे. दादू, इदर काहे को आये, रामगंज से भौत सारी बसें वां जाती हैं. यां से तो बालीपुर से जाने वाली एक बस कभी-कभी निकलती है. उसका टैम तो है, आ जाय तो तुमारी तकदीर...महिला के स्वरों में सहानुभूति थी. बातें सुनते हुए आंखें उसके चेहरे पर टिकी हुई थीं, जिस पर गंभीरता ही गंभीरता थी.

लग रहा था मुस्कान किसी ऐसे ऊंचे वृक्ष पर जाकर बैठ गयी है, जहां से उतरना शायद उसके लिए मुश्किल हो रहा हो."

"चा पियोगे..."

"थोड़ी देर बाद दे देना..." बस के झंझट ने उसे एकदम अपसेट कर दिया. वह उस तथाकथित कैंटीन के पास दुबले-पतले वृक्षों के बीच पड़ी, बड़ी सी चट्टान पर जाकर बैठ गया.

अब उसके मस्तिष्क की स्क्रीन पर वृक्षों की दुनिया के बजाय अपनी दुनिया के चित्र आने लगे. कंपनी-ऑफिस, हिंदुजा द्वारा सौंपी गयी जिम्मेदारी, पिथौरा-साइट, केदारनाथ ऑपरेटर, और एक धुंधला सा गमगीन भरा चेहरा चौकीदार का जिसके बेटे को मौत ने अचानक निगल लिया था. चौकीदार को कैसे समझाया जाये, क्या वह मान जायेगा ? क्या बेटे की मौत की क्षतिपूर्ति उसके लिए रुपयों के बदले हो जायेगी...? अचानक चाय वाली की आवाज़ ने उसे चौंका दिया -"दादू चा पी लो, ये कुरमुरे भी खा लो भूख लगी होगी, पानी लाती हूं..." चाय से भरा कांच का कट ग्लास तथा कुरमुरे से भरा दोना वह चट्टान के एक ओर रख रही थी.

"तुमने बहुत अच्छा और प्रेम से नाश्ता कराया. तबीयत खुश हो गयी." मुस्कुराकर नितिन ने उसके चेहरे पर निगाह टिका दी.

"खुश हो गये ना. लखमी का काम ही सबको खुश करना है. न जाने कां-कां से भूले-भटके लोग आ जाते हैं." अपने सुर्ख गालों पर हाथ रखकर हंसते हुए वह उसकी ओर देख रही थी. इतनी देर में पहली बार उसने उसे एकदम खुश और निकटता का अहसास कराते देखा.

पर्स से दस रुपये का नोट निकालते हुए उसने उसकी ओर बढ़ाया -"लो..."

"इत्ता ! दादू, ये तो जादा है..." वह मुस्कुरा रही थी.

"रख लो..."

"रखूंगी तो, पर जितने तुमारे पैसे बचते हैं, थोड़ी देर में दे दूंगी." लहंगे में खोंसी पॉकेटनुमा-थैली में नोट रखकर, वह ग्लास उठाने लगी.

तभी पीछे की ओर खंजरी बजाता हुआ, एक व्यक्ति सामने आकर खड़ा हो गया.

"लखमी बेटा, कर दी ना दादू की आत्मा खुश... अच्छा करा. इस पट्टी में तू ही तो एक समझदार है."

लखमी उस व्यक्ति की ओर कनखियों से देखकर पलट गयी.

लुंगी, घुटने तक का चोंगा, कंधे पर गोल आकार का मैला सा झोला, नंगे पैर तथा सिर पर हरा कपड़ा बांध रखे, लंबोदरे चेहरे वाले उस व्यक्ति में नितिन ने अजीब किस्म का खिंचाव महसूस किया.

"बेटा, कुछ सुनना चाहोगे...?"

"इस भेष वाले बिना पूछे ही खंजरी बजाकर राग अलापने लगते हैं. आप तो पूछ रहे हैं, बड़ी बात है..."

"अरे बेटा, संतों की तारीफ नहीं करते..." वह ठ्ठाकर हंसा तथा खंजरी बजाकर गाने लगा...

"गुरु अपने ने बाग लगायो,
एक लगाय लियो केला,
उड़ जायेगा हंस अकेला,
दो दिन का है यह मेला,
भगति करि है गुरुजी आये
सेवा करिकै चेला,
गुरु अपने ने पैसे बिखेरे
बीन रहे हैं चेला..."

अचानक खंजरी बंद कर वह चुप हो गया. नितिन ने देखा उसकी आंखों से आसुंओं की अविरल धारा बह रही है.

"बाबा, क्या बात है...?"

"कुछ नहीं बेटा ! वह आंसुओं को पोंछ रहा था."

नितिन ने पर्स निकाला.

"कुछ देना चाहते हो. रहने दो बेटा हमारे लिए पैसा गूलर का फूल नहीं है और फिर जिस धरती मां की गोद में हम रहते हैं, उसने बहुत दिया है, मीठा पानी, फल, अन्न, किसी बात की कमी नहीं है. टेकरी के उस कोने पर मढ़ैया है. सब गुरू की कृपा है. और बेटा एक बात याद रखो दाम को लुटाओ मत उसे हमेशा दबा कर रखो. गुरू ने कहा है-

"कागद, केरा, पान अरु दासी, दुर्जन, दाम,
जे नी दाबे ही भले, रुइआ, महुआ, आम."

उसकी इच्छा बाबा से बातें करने, कुछ पूछने, जानने की हो रही थी, किंतु वह तुरत-फुरत हंस की तरह उड़कर, खंजरी बजाता हुआ, आगे बढ़ गया.

धीरे-धीरे शाम का धुंधलका पसरने तथा पक्षियों का कलरव बढ़ने लगा. नितिन बार-बार आज के मनहूस दिन को कोस रहा था. लखमी ही नहीं कुछ अन्य लोगों ने भी बताया कि पिथौरा जाने वाले दुपहिया वाहनों से प्रायः पैसेंजर को लिफ्ट मिल जाती है. पर दुर्भाग्य ! इतने अंतराल में एक भी वाहन उस ओर जाता हुआ दिखाई नहीं दिया. और बस, हो सकता है अब नहीं भी आये.

उसके दिमाग से इस मुद्दे पर कुछ नये सोच के बिंदु की काली लकीरें जब आने लगीं तो वह बेचैन होकर खड़ा हो गया तथा, चहलकदमी करने लगा. ऐसा करते हुए भी जब अपने को नहीं बहला पाया तो वापस, चट्टान पर आकर बैठ गया.

जंगल की शाम और घाटी-खंदकों में धीरे-धीरे उतरती जा रही सूरज की किरणों में नितिन भी डूबने-उतराने लगा. वृक्षों का हवा के झोंकों से लहराना, संगीत सी ध्वनि पैदा करने वाला था. वह इसी वातावरण में खोया था कि अचानक उसने महसूस किया कि वायु का वेग धीरे-धीरे बढ़ रहा है. यह तय था कि अब इस

सीतावन की सीमा से निकलना संभव नहीं है. बेहतर होगा, रात काटने के लिए उस खंजरीवाले बाबा की मढैया में चला जाये.

उसने अपना ठिकाना कहां बताया था... हां टेकरी पर ही कहीं. वह उस तरफ जाने के लिए खड़ा ही हुआ था कि हवा ने जोरों से धक्का देकर उसे पटक दिया. उसने फिर खड़ा होने की कोशिश की और हवा ने फिर उसे पटकनी मारी. लगा, हवा अपनी कुश्ती के दांव बता-बताकर उसे चित्त कर रही थी.

उसने देखा, आमने-सामने, आस-पास सभी तरफ वृक्ष जोरों से हिलते हुए धरती माता को प्रणाम करने की मुद्रा में नीचे तक झुक रहे हैं. चिल्ल-पों की आवाज़ उसके कानों में गूंजने लगी.

"हवा आ गयी है भागो..." उसे लगा, कुछ ऐसी आवाज़ें टेकरी से प्रतिध्वनित हो रही हैं.

लखमी भी अपनी दुकानदारी समेटकर शायद, पास ही बने अपने कोठड़े में चली गयी थी. नितिन की समझ में नहीं आ रहा था, क्या करें ? कहीं हवा के रूप में मौत तो नहीं आयी, दादी कहा भी करती थीं - मौत हवा बनकर आदमी को अपने साथ ले जाती है.

अचानक उसने देखा, लखमी भागती हुई, उसकी ओर आ रही है. हवा में लहराती हुई उसकी आवाज़ आयी - "दादू चल मेरे कोठ्ढे में..." कंधा पकड़कर उसे उठाने लगी.

"नहीं, छोड़ो मुझे, मैं खंजरी वाले बाबा की मढैया में जा रहा हूं..." उसने उसे झकझोर दिया. इस संकट के समय में भी न जाने क्यों, नितिन के मस्तिष्क में यह विचार हवा के बवंडर की तरह कौंधने लगा था कि - शायद ये औरतें ऐसे ही मौकों का फायदा उठाती हैं. क्या पता कोठड़े में ले जाकर यह और इसका पति कैसा व्यवहार करे, और फिर उसका ब्रीफकेस भी तो रूपयों से भरा है.

"अरे दादू वां तक जाते-जाते तू कुत्ते की तरे बेमौत मर जायेगा. चलता है कि नी..." और न जाने कौन से अधिकार का प्रयोग करते हुए उसने एक हाथ से उसे बगल में दबोचा, दूसरे में अटैची लटकाई तथा हवा के तूफान में तैरते हुए कोठ्ढे पर ले जाकर पटक दिया.

"क्या समझके तू आने का ना-नकुर कर रहा था. मैं कोई डकैत हूं जो तेरे को लूट लूंगी या धंदेवाली औरत. तैंने समझा क्या...एं...एं..." वह पूरी तरह हांफ रही थी. तेज हवा के सरसराते झोंके कोठ्ढे में आ रहे थे, लग रहा था हवा का दबाव घर को उड़ा ले जायेगा...

लखमी थोड़ी देर खड़ी-खड़ी उसे तेज आंखों से घूरती रही फिर फटाक से दरवाज़ा बंद किया तथा सिर पर दोनों हाथ रखकर एक कोने में बैठ गयी.

बाहर सांय-सांय की आवाज़ें तथा कमरे में छाये सन्नाटे को पांच दस मिनिट बाद भंग करते हुए वह बोली -"दादू, कहे सुने का बुरा मत मानना, चलो वां बैठ जाव." उसने पीछे की ओर वृक्ष के मोटे तनों पर बांस की खपच्चियों से बनी खटिया की ओर इशारा किया. अब तक आकस्मिक रूप से घटित घटना-क्रम पर नितिन ठीक से सोच ही नहीं पा रहा था. वह ब्रीफकेस हाथ में लेकर उस ओर बढ़ा. लखमी ने लकड़ी की संदूकची में से दरी निकालकर बिछा दी. बेल्ट-जूते निकालकर थके हुए शरीर ने बिना किसी तकल्लुफ का ख्याल किये बिस्तर पर अपने को डाल दिया. हवा के जोरों से चलने तथा दीवाल से बार-बार टकराने की आवाज़ें आ रही थीं. वह सोचने लगा बाहर कितना डरावना तथा भयानक दृश्य होगा.

जहां वह बैठा था लकड़ी, पत्थर तथा मिट्टी से बने उस लंबे-चौड़े कोठड़े के आधे से अधिक भाग को लकड़ी की बल्लियां खड़ी कर अलग कमरेनुमा आकार दे दिया गया था. इसी तर्ज पर आगे वाले भाग के एक कोने को मवेसी का कोठा बनाया गया था, जहां भैंस अपने शरीर को ऐसे सिकोड़कर बैठी थी, मानों किसी हमले से बचने के लिए आत्मरक्षा का प्रयास कर रही हो.

"दादू ले गरम-गरम चा पी ले. ये पट्टी की नी लखमा के घर की चा है." नितिन के हाथ में ग्लास थमाकर वह नीचे बिछी चटाई पर बैठ गयी.

"दादू कोठड़ा, देखा. केसू के बाबा ने बनाया पूरा अपनी अकल से. वो बस दिन में येज करता रेता. भैंस बांधने की भी उसी की इच्छा थी. चा अच्छी नी लगी ?" नितिन ने लखमी की ओर देखा जिसने लहंगे पर पूरी बांहों का ब्लाउज पहन रखा था.

"ऐसे क्यूं देख रहा है दादू...तेने ये तो बताया नी चा कैसी बनी." लखमी, मुस्कुराकर उसकी ओर देख रही थी.

"बहुत अच्छी, पूरे दिन की थकान दूर हो गयी."

"वो भैंस के वां पानी है. उठके मु धो ले. तब तक तेरे लिए खाने-दाने की विवस्था करती हूं...बाहर से जो आवाज़ आ रही है, उससे डरना मत ये हवा तो जब-तब ऐसेज डकैत की तरे सत्यानास करने आ जाती है." लखमी समझाइशें देकर आगे की ओर चली गयी.

थोड़ी देर बाद लोटे में पानी तथा थाली में कुछ पका हुआ लेकर वह लौटी -"दादू ये सबा है, खाले. केसू का बाबा, इसको देखकर खुश हो जाता. मिरच से खाकर, भैंस जैसे भैं...भैं...करके डकारें लेता." उसने भी जब पकवान की तारीफ की तो वह खिलखिलाकर हंस पड़ी. हंसी के कारण उसके गौर-वर्ण पर लालिमा छा गयी जिसे देख नितिन अजीब सा खिंचाव महसूस करने लगा.

"दादू, ये बस चलाने वाले जैसा क्यूं देख रहा है."

"बुरा नहीं मानो तो एक बात कहूं तुम्हारी जैसी सुंदर औरतों को शहर में हिरोइन कहा जाता है..."

वह फिर खिलखिलाई -"तैंने भी बता दी ना आदमी की जात. केसू का बाबा सही ही केता था - जहां लोग फिरने जाते हैं, वहां

पीपल, खेत की मेड़ पर महुआ, कपास के साथ तिल्ली और वेवा के घर में आदमी का होना ख़राब होता है. पर तू मेरे को भला लगा इसलिए ले आयी. अब चुपचाप सो जा और सुन रात में कोई वात हो तो मेरे को लखमी करके बुला लेना..." हल्की सी मुस्कान विखेरते हुए उसने थाली और लोटा उठया तथा चली गयी.

नितिन उसकी लहराती हुई चाल और व्यवहार में एकदम आये बदलाव को देखकर बुदबुदाया -मुझे आदमी की जात के बारे में बता रही थी और खुद, कैसे एक्शन मारकर कह रही थी - रात में बुला लेना. फिस्स करके वह हंसा तथा ब्रीफकेस को सिरहाने रखकर नींद के आगोश में डूबने का उपक्रम करने लगा.

लखमी से हुई अब तक की चर्चा से उसके व्यक्तिगत जीवन के बारे में उसने यह जान लिया कि वह विधवा है तथा एक वेटी केसू की मां, जिसे शायद ब्याह दिया गया है.

चिमनी का उजाला, अपनी रेखाएं इधर-उधर खींचकर अंधियारे के वीच अपने अस्तित्व का अहसास करा रहा था. तेज हवा के चलने, वृक्षों के गिरने, आपस में टकराने या सरसराने से ऐसी आवाज़ें आ रही थीं मानों वे इस हमले से व्यथित होकर चीख रहे हों. अनजानी ज़गह, अकेली औरत का साथ, वाहर मौत का तांडव, क्या पूरी रात वह सुरक्षित रह पायेगा. अचानक अज्ञात भय से आतंकित हो, अपने को पोटली सा सिकोड़कर नितिन ने आंखें मूंद लीं.

भरभराकर कुछ गिरने की आवाज़ सुन, वह हड़वड़ाकर उठ वैठा.

"डर गये दादू. हवा जव कालका वनती है, तव ऐसेज़ जिभान फाड़ती है. मरद जात होके डर गये, आसपास का कोई सा झाड़ भित पर पड़ा होगा. लो दूध पी लो. तुम्हारे लिए ताज़ा निकाला है." दूध से भरा छोटा सा लोटा उसने उसकी ओर बढ़ा दिया.

नितिन सोच नहीं पा रहा था कि क्या करे. उसे असमंजस में देख वह मुस्कुराई -"मन में कोई खुटका है ? हो तो निकाल दो और पी लो, अच्छे से नींद आ जायेगी. पीते हो या मैं मुं में ठूंस दूं..." केसू के बाबा को कभी ऐसेज़ पिलाना पड़ता था. उसे अपनी ओर आते देख, वह सिहर उठ तथा चुपचाप लोटा थाम लिया.

"दूध मीठ था ना ? केसू के बाबा इस भैंस को इसी वास्ते खूब सांटा खिलाता था. जानता है, क्या करता था, जब भी वालीपुर जाता, इसके वास्ते सावन की एक बट्टी अलग से लाता. हंसकर कहता, इसे गाय की तरे धोली-फक्क कर दूंगा, मैं केहती, कैसी वातें करता है, कहीं जामुन के झाड़ पे भी केरी लगी है. तो वह समझाता अरे यह दगावाज़ धोली नी भी हुई तो धोला फट्ट किया केहते हैं उसे सफेद झक्क दूध तो देगी..." वह खिलखिलाकर हंसने के बाद, थोड़ी देर चुपचाप उसकी ओर देखने लगी, फिर प्यार से वोली, "दादू एक वात कहूं मैं भी यांज सोई रूंगी, तेरे को डर भी नी लगेगा और मेरु को भी नींद अच्छे से आ जायेगी...तू अब सो..."

लघुकथा

चमत्कार

मदन मोहन 'उपेंद्र'

एक राजा था, जो अपने राज्य में नये-नये चमत्कार कराकर बड़ा प्रसन्न हुआ करता था. इसलिए दूर-दूर देशों के लोग उसके यहां आकर, अपने चमत्कार दिखाया करते थे, और इनाम भी पाते थे. राजा भी नये-नये चमत्कार दिखवाकर अपने राज्य की शोषित, पीड़ित जनता को पीड़ा भूल जाने की सलाह, यह कहकर दिया करता था कि सभी पीड़ाएं खुशी-खुशी सहन करते रहो क्योंकि देश तरक्की कर रहा है. नये-नये चमत्कारों से देश का नाम सारी दुनिया में रोशन हो रहा है. इस प्रकार जनता का असंतोष दबा रहता था और राजा अपने ऐश में और कारिंदे जनता के शोषण में लगे रहते थे.

एक दिन अनायास ही, एक ऐसा वैज्ञानिक राजा के पास आया, जिसने उन्हें एक ऐसा यंत्र दिखाया, जिसमें भविष्य की स्थितियों की परछाइयां स्पष्ट नज़र आती थीं. राजा ने अपना दरबार लगाया, जनता को एकत्रित किया और वैज्ञानिक से चमत्कार दिखाने को कहा. वैज्ञानिक ने अपना यंत्र ऊंचे मंच पर लगाया और चालू कर दिया. यंत्र में तूफान और अकाल के दृश्य साफ-साफ उभरने लगे. जनता त्राहि-त्राहि करती और मरती दिखाई देने लगी. दूसरी ओर राजा के ऐशो-आराम की तस्वीरें भी उभरने लगीं. सामने बैठी जनता के धैर्य का पैमाना छलकने लगा. आक्रोश, बौखलाहट में बदल गया और भीड़ में से पत्थर और ईंट ऐसी बुरी तरह से फिंके कि यंत्र टूट गया, राजा और कारिंदों को अपनी जान बचाकर भागना पड़ा.

ए-१० शांतिनगर, मथुरा २८१००१

थोड़ी देर इधर-उधर चहल-कदमी करने के वाद वह नीचे चटाई विछाकर सो गयी.

लखमी के इस आकस्मिक प्रस्ताव तथा तुरंत क्रियान्वयन की स्थिति ने नितिन को पुनः शंका-कुशंकाओं के वैचारिक घेरे में बंद कर करवटें वदलने के लिए मज़बूर कर दिया. नींद को आवाज़ देते-देते जव थक गया तो अचानक उसकी निग़ाह, लखमी पर टिक गयी, जो उसकी ओर पीठ देकर सो रही थी. ब्लाउज के अग्रभाग को बांधने वाली दो पतली डोरियों के अलावा पूरा पृष्ठ भाग खुला था. उस चमकते हुए गौरवर्णी मांसल आकर्षण में नितिन न जाने किस दवाव में आकर खोने लगा.

"दादू नींद नी आ रही है. मैं सुला दूं." लखमी ने अचानक करवट वदलकर उसकी ओर ऐसे देखा मानो उसकी गतिविधि को आहट के किसी संकेत से समझ रही हो..

सवाल सुनकर, वह हड़बड़ाया ही नहीं, सिहर भी उठा. मानो चोरी करते हुए रंगे हाथ गिरफ़्त में आ गया हो.

वह उठकर आगे की ओर गयी. किसी संदूकची के जोरों से खुलने तथा बंद होने की आवाज़ आयी. नितिन की सांसें ऊपर-नीचे होने लगी. समझ नहीं पा रहा था, क्या घटित होने वाला है.

"ये चादर ओढ़ा देती हूं नींद आ जायेगी. केसू के बाबा को भी ऐसेज सुलाती थी." लखमी ने मुस्कुराते हुए उस पर चादर डाल दी. नितिन ने लालटेन की रोशनाई में उसके दमकते चेहरे की ओर देखा जो उसे पल-पल में अपने विशेष आकर्षण की ओर खींच रहा था.

"दादू, तेरे से कित्ती बार केह दिया ना, मेरी तरफ ऐसे मत देख..." उसने फिर, हमेशा की तरह हंसी की चकाचौंध पैदा की तथा चटाई पर सो गयी.

नितिन ने अपने को लिहाफ से ढंक तो लिया किंतु वैचारिक ऊहापोह से अपने को मुक्त नहीं कर पाया. सोच के लंबे डगर में घूमते-घूमते, अचानक शंका का कांटा पैरों में चुभ गया -"मुझे ढंक कर सुलाने के पीछे, इसकी ब्रीफकेस में से रुपये निकालने की नियत तो नहीं..."

आंखें मूंदी ही थीं कि, तेज आवाज़ों ने उसे चौंका दिया. शायद अंधड़ के कम होने के बाद तेज बारिश होने लगी थी. वृक्षों के समूहों की चीत्कार भी संभवतः बारिश की उसी मार के कारण हो. बाहरी वातावरण की कल्पना में भय से उसके शरीर के रोयें खड़े होने लगे. इस आतंक तथा भय से मुक्ति देने के लिए नींद ने अपने आगोश में उसे कब ले लिया, पता नहीं.

❒

पक्षियों के कलरव तथा पशुओं के हुंकारने या रंभाने के कारण हो रही बाहरी हलचल ने झकझोर कर उसे जगा दिया. चादर से मुंह बाहर निकाल कर देखा दीवालों में बने आठ-आठ इंच व्यास के सात-आठ छिद्रों में से छिन-छिनकर आ रहा प्रकाश इस बात का सबूत दे रहा था कि सुबह हो गयी है तथा मौसम एकदम साफ है.

"नींद खुल गयी दादू..." लखमी, जो शायद बहुत पहले जगकर अपने नित्यकर्म से निबट चुकी थी, आत्मीय मुस्कान बिखेरते हुए उसके सामने थी.

"अच्छे से नी सो सके ना. नवी जगे, नवे लोग और संसार-खतम होने जैसे अंधड़ में कौन चैन की बंसी बजा सकता है. जंगल जाने का मन हो तो उदर कलसा रखा है. नी तो मुं-वुं धो लो - फिर चा और उसके बाद दूद...चलो उठो..." लखमी ने हंसकर चादर खींच दी. -"बुरा मत मानना. केसू के बाबा को भी ऐसेज उठती थी..."

नितिन न जाने क्यों अत्यधिक ताज़गी महसूस कर रहा था. वह फुर्ती से उठ तथा लोटे में पानी लेकर दरवाज़े के बाहर खड़ा हो गया. दूर-दूर तक अंधड़ और वर्षा के करतबों का नज़ारा दिखाई दे रहा था. बिखरे हुए पत्ते, टूटी हुई डालियों, जड़ से उखड़े हुए वृक्ष, बहता या गड्ढों में भरा हुआ पानी और इस पूरे वातावरण पर गिर रही सूर्य की किरणें. इधर-उधर निगाह घुमाते हुए वह एक बड़े से पत्थर पर बैठ गया तथा कुल्लाकर मुंह धोने लगा.

रूमाल से मुंह साफ करते हुए, निकट ही खड़े नीम के वृक्ष को देखकर, उसे ऐसा लगा मानो कोई आत्मीय उससे रूबरू हो रहा हो. दादी इस नीम के वृक्ष को बहुत महत्व देतीं, कहतीं -बेटा माता-पिता का प्रेम इस नीम की छांव की तरह होता है, निश्छल, चिर-हरित तथा हर उम्र में सहलाने वाला. भादौं महीने की कजली तीज को वह उसकी पूजा करतीं तथा तिलक लगाकर उसे चौकी पर बिठा देतीं, कहतीं -"नीतू ! तू आज का पंडित, चल कथा बांच," और वह शुरू हो जाता...एक कुष्ट रोगी था, वह बड़ा वेश्यागामी था, पर उसकी पत्नी बड़ी पतिव्रता थी. एक दिन पति ने पत्नी से वेश्या के यहां ले जाने को कहा - वह उसे कंधे पर बिठाकर नदी पार वेश्या के यहां ले गयी. लौटते में नदी में बाढ़ आ गयी. नदी पार करते हुए उसे नीम की डाली मिली. उसने कहा -घर ले जाकर मेरी पूजा करना. पूजा करने पर पति का मन पत्नी की तरफ पलट गया. एक दिन पत्नी मर गयी. यमदूत वैकुंठधाम के लिए उसको लेने आये पत्नी ने कहा मेरे पति को भी ले चलो. पति ने कहा वेश्या को ले चलो, वेश्या ने कहा मेरे पति पूरे शहर के लोग हैं, उनको भी ले चलो. यमदूत ने सबको ले लिया. और इस प्रकार एक पतिव्रता स्त्री के द्वारा नीम की पूजा करने के कारण कई लोगों को वैकुंठधाम मिल गया....

नीम के साथ जुड़ी दादी को याद कर वह आत्मविभोर होकर मंद-मंद मुस्कुराने लगा.

"अरे दादू...कित्ती देर से बाहर बैठ है, चल चा पी ले..." लखमी अंदर से आवाज़ लगा रही थी.

खटिया पर बैठे बूंद-बूंद चाय पी रहे नितिन की ओर जब लखमी एकटक देखने लगी. वह हंसकर बोला- "कल पच्चीसों बार तुम मुझे टोक चुकी हो, अब खुद क्या कर रही हो..."

लखमी अपनी एकाग्रता ऐसे कायम किये हुए भी, मानो कुछ सुना ही नहीं हो. पांचेक मिनिट बाद, उसकी जुबान खुली -"दादू, एक बात पूछू, तेरी घरवाली भौत अच्छी दिखती है. है ना!! तेरा एक सातेक बरस का बच्चा भी है ! है ना !! अच्छा अब सुन कल जब अंधड़ आया तब वो मेरे सामने आयी और कहने लगी -लखमी, मेरा घरवाला तेरे कोठड़े के बाहरे बैठ है, उसको बचाना, नी तो ऐसा नी हो कि, इस बच्चे के साथ मैं एकली पड़ जाऊं. और वो रोने लगी. मेरे से उसका रोना सेन नी हुआ. मेरे को मालूम है आदमी के नी होने पे जवान औरत की ज़िंदगानी कैसी हो जाती है. ऐकले में रोते हुए वो उठती है और वैसेज सो जाती है. दुनिया के लोग उसे पूछते ज नी, और पूछते भी हैं तो आंख घाघरे पे होती है. दादू, मेरे में अकल तो है नी, पर उसको देखकर मेरी मति फिर गयी. और मैं तेरे को जबरदस्ती खींच लायी. नी तो घर का दरवाज़ा ठेंकने वाले आदमियों को कुत्ते की तरे लकड़ी से मारकर भगाने वाली, इस लखमी को क्या पड़ी, जो आदमी को घर में लाये..."

बिना एक क्षण का विराम लिये लखमी, जाने कब से अपने दिल-दिमाग में ज़ज़्ब विचार को, व्यक्त कर लंबी सांस लेने लगी.

नितिन संजीदगी भरा वक्तव्य सुनकर रोमांचित हो उठा. इस जंगल में ऐसी औरत. बोलने के लिए कुछ शब्द ढूंढ ही रहा था कि लखमी के बोल फिर फूट पड़े - "दादू, मैंने तेरी औरत का काम कर दिया. तू मेरा काम कर दे. मेरी केसूड़ी को ढूंढ़ कर ला दे. उसको वोट मांगने वाले धनी-मानी डकैत उठाकर ले गये. उसके बाबा की वह मेरे से जादा लाड़ली थी. दिखने में बस मेरे जैसी. पट्टी और टेकरी के लोग कहते -"लखमी ये तो हीरा है, इसको छिपा के रख." उसको हम छिपा केज रखते, पर उस दिन मति मारी गयी. अब मति मारी नी गयी होती, तो न तो उसको चा की दुकान पे ले जाते और न कार में बैठकर आये वे चार-जन उसको उठाकर ले जाते. हम दोनों ने खूब झूमा झटकी करी. केसू के बाबा ने तो उनके कपड़े तार- तार कर दिये. पर राछसों ने उसको घेरकर खूब मारा और एक ने बड़ा भारी भाटा उसके माथे पे दे मारा. बिचारा वांज ढेर हो गया. पट्टी के लोग आये उसके पेले वे भाग गये. पट्टी वालों ने ज बताया कि वे वोट मांगने वाले धनी-मानी डकैत थे.

केसू का बाबा मरते-मरते मेरे से के गया, मरना मत, केसूड़ी का घर बसाकर तेरे साथ रख लेना. दादू, मेरी केसूड़ी कोज नी, वोट मांगने वाले, धनी-मानी, डकैत जो अच्छी लग जाय, उसकू उठाकर ले जाते हैं. और थोड़े दिन बाद रात-बिरात सड़क पे छोड़ जाते हैं. पर मेरी केसूड़ी को सालेकभर हो गया. दादू, इस गांव के जन, किसी के सामने हाथ नी फेलाते, मैं तेरे सामने झोला फैलाती हूं. मेरी केसूड़ी को ढूंढ़ ला दे."

लखमी रोते हुए, लहंगे में खोंसी चुन्नी जैसी साड़ी का पल्लू फैला रही थी. नितिन के दिमाग में कल उठे हवा के अंधड़ से भी तेज बवंडर उठने लगा. उसे लगा वह चेतना-शून्य होता जा रहा है. उसे कल्पना भी नहीं थी कि, अश्वत्थ, वट, पीपल, नीम, आंवला, पारिजात, पलाश या अशोक जैसे दैवीय गुण वाले वृक्षों के पवित्र जंगल-राज को आसुरी-वृत्ति के संवेदनाहीन शहरी-जंगलियों ने लील लिया है और वृक्ष इसीलिए रात-दिन सांय-सांय करते हुए, अपने अधिकार की गोहार लगाते रहते हैं, जिसे सुनने वाला शायद कोई नहीं है.

लखमी की खुशनुमा ज़िंदगी के अचानक छिन्न-भिन्न हो जाने की व्यथा कथा सुन, नितिन का मन दर्द के सैलाब से उपजे मोह में डूबने-उतराने लगा. भावोद्वेग के वेग से उसकी आंखें नम हो गयी.

"दादू, तेरी आंखों में पानी. अरे मरद वो जो रोये नी, रोने वाले की आंखें पोंछे...मेरी समज में आ गया, तू मेरे को मदद नी कर सकता..."

"नहीं...नहीं...ऐसी बात नहीं, मैं ज़रूर कुछ न कुछ करूंगा." उसके स्वरों में दृढ़ता थी.

लखमी के धूमिल चेहरे पर, धीरे-धीरे परिस्थितियों से संघर्ष करने की रौनक लौटने लगी तथा आंखों में वही चमक जो वह कल से देख रहा था.

"दादू, चा और पीयेगा...रेहने दो, तेरे लिए दूद बनाती हूं, और सुन, ये पट्टा-बट्टा बांधकर, तैयार हो जा. सूरज भगवान घर में घुस आये हैं. तेरी रामगंज वाली बस आने में होगी, पिथौरा जाना है ना..."

नितिन को उसकी अपनी दुनिया में लौटाकर वह खड़ी हो गयी.

वह बाहर निकला. सुबह की धूप छितर गयी थी. आंगन के नीम की मंद-मंद हवा के स्वर फूट रहे थे - जमाना कितना भी बदले माता-पिता की तरह मैं अपने नेह की छांव, निश्चल, चिरहरित और हमेशा सहलाने वाली बनाये रखूंगा.

पट्टी की तरफ जाते हुए उसने देखा हवा के दंगे से पीड़ित अनेक वृक्ष लस्त-पस्त, हाथ-पैर फैलाये बेजान पड़े हैं तथा जिस पत्थर की बड़ी चट्टान पर वह बैठा था, उस पर आसपास के धाराशाही वृक्षों ने कब्जा कर लिया है. अचानक वह कांप उठा. यदि लखमी उसे खींचकर नहीं ले जाती तो वह शायद इनके बीच होता.

बिदा करने के अंदाज में कोठड़े से, अपने हाथों में थामे ब्रीफकेस को लखमी ने नितिन के हाथों में थमाकर रोड के एक किनारे की ओर इशारा किया - "वां खड़ा हो जा. तेरी बस आने मेंज होगी. मुझे मेरे टीन-टप्पर लगाना है. और दादू सुन मैंने जो काम बताया है, उसको करना..." यह सब कुछ कहते हुए उसकी आंखों में आंसू नहीं, चेहरे पर मुस्कान थी, वह मुस्कान जिसे उसने पहली बार देखा था.

कस्बाई बस की भीड़ को चीरता हुआ वह अंदर घुस गया. कंडक्टर ने संभ्रांत सवारी देख एक व्यवस्थित सीट उपलब्ध करा दी. बस के चलने के साथ ही सत्तरह घंटे का संग धीरे-धीरे पीछे छूटने लगा. वृक्ष, खाइयां, ऊंची नीची टेकरियां और सड़क के किनारे की पट्टी, जिसके एक कोने पर, लकड़ी मिट्टी से बनी टेबल, उस पर मिट्टी की अंगीठी और उसमें पड़े कोयलों को पंखों से हवाकर आग की तपन बढ़ाती लखमी.

इस सबके छूटने के साथ ही हिंदुजा कंपनी, पिथौरा-साइट और चौकीदार प्रकरण उसके मस्तिष्क में तेजी से घूमने लगे. पुत्र-वियोग से दुःखी चौकीदार उसके सामने घुटनों के बल आकर बैठ गया. दांये हाथ की मुट्ठी ब्रीफकेस पर ठेंकते हुए नितिन ने निश्चय किया, लखमी को वह केसूड़ी दिला पायेगा या नहीं फिलहाल भले ही वह यह तय नहीं कर सके किंतु चौकीदार को उसका अधिकार दिलवा कर रहेगा.

✍ ७६६, सुदामा नगर, इंदौर - ४५२ ००९

कहानी

पहला पत्थर

पसमंज़र...

मैं जिनका किस्सा बयान करना चाहता हूं वो सौ में से अस्सी हैं. हो सकता है, सूरत-शक्ल और जीवन शैली जुदा हो, लेकिन मज़बूरी, बेबसी, लाचारी और हालत में हमारी इनसे आस-पास की रिश्तेदारी नज़र आती है. आप कहेंगे बाकी बीस जो बचे क्या वो दुश्मन हैं ? कैसे कहें वो ही तो कहलाते हैं खानदानी, सभ्य, शिष्ट, संभ्रांत, अदबी, श्रेष्ठ, शरीफ़, एलीट. चाहे ये ताज़दार हों या बेताज़ इनका मिज़ाज, सोच-समझ, नियत प्रवृत्ति वही रहती है.

कहते हैं बीसा को वरदान है इसके पाप, कुकर्म, जुर्म अपने-आप पुण्य और सदकर्मों में तब्दील होते रहते हैं. हां, अगर फिर भी पाप रह जायें तो ऊपरवाले ने उसकी भी व्यवस्था कर दी है. एक बार गंगा में डुबकी लगायी कि सब पाप धुल-धुला के जन्म जन्मांतरों के लिए पापों से मुक्ति.

पाप करते रहने का रियाज़ होता रहे और आदत न छूट जाये, साथ ही हौसला भी बुलंद रहे तो उसके लिए बारह साल में एक-एक डुबकी भी लगा ली तो बस, लाइसेन्स भी रिन्यू होता रहता है.

कहते हैं अस्सी पापों की सजा भुगतते रहते हैं. तो ये भी पहुंच जाते हैं गंगा जी में डुबकी लगाने ताकि पिछले जन्मों के पापों से मुक्त हो जायें. लेकिन इनके पाप धुलने के बजाये, बीसा के धुले पाप इनसे और चिपक जाते हैं, और अगले कई जन्मों तक अस्सी, अस्सी ही रह जाते हैं. अस्सी को शायद पता नहीं है कि ये विशेष व्यवस्था केवल बीसा के लिए ही की गयी है.

बीसा कभी बदलता नहीं. इसके रोबटिया अंदाज़ से पहचान सकते हैं. वास्तव में ये रोबोट हैं इन्सान नहीं हैं. इन बीसाओं के पास कहते हैं बड़ी रावनी विद्या है, मरते-मरते उसी गुण-धर्म के दस और रोबोट पैदा हो जाते हैं और वो भी टोपी झाड़ के और सीना तान के ऐसे खड़े हो जाते हैं जैसे इस दुनिया का हर ठाट-बाट, सुख-सुविधा, इस देश का खज़ाना, हर सम्मान इनके बाप की ज़ागीर है. इस सब पर सिर्फ इनका ही एकाधिकार है.

बीसा पे देशभक्ति की मुहर लगी हुई है - वो अपने शाही तौर-तरीकों और मिज़ाज के बल पर देश को बाइसवीं सदी में खैंचे हुए हैं और बाकी सब तो इस देश की खुशहाली के दुश्मन हैं जो इसे आगे बढ़ने ही नहीं देते. चौथी सदी में सिकोड़े बैठे रहते हैं. जनाब, देश की सत्ता, उद्योग और व्यवस्था बीसा की प्राइवेट लिमिटेड कंपनी है. इसने शुरू से ही स्वदेशी के नारे तले सड़ी-गली, निकृष्ट घटिया, मिलावटी, नकली और इन्सानी प्रयोग के लिए वर्जित चीज़ों को ज़बरदस्ती निगलने और प्रयोग करने के लिए बाध्य किया हुआ है. ये स्वयं स्वदेशी नारे के अतिरिक्त किसी और घटिया चीज़ का इस्तेमाल नहीं करते. ये स्वयं इंपोर्टेड चीज़ों का ही इस्तेमाल करते हैं - इनके बच्चे, इनकी पीढ़ियां अमेरिका और योरप में ही पढ़ती, बसती, पलती हैं. ये देश तो इनकी और इनके पुरखों की लूट-खसोट स्थली रही है - लूट-खसोटिस्तान, जिसका पैसा ये विदेशी बैंकों में रखते हैं.

अमर स्नेह

वैसे अस्सी भी कम वरदानी नहीं हैं. यहां हमें ईश्वर की साइंटिफिक प्रतिभा की दाद देनी पड़ेगी कि, उसने इस महान देश के लिए अस्सी जैसे विचित्र प्राणी का निर्माण किया जो एक साथ ज़िंदा भी है और मरा हुआ भी है. इस अस्सी नाम के विशिष्ट प्राणी में इस देश के महान प्रजातंत्र को झेल पाने का विशेष संयंत्र लगा हुआ है जो कभी फेल नहीं होता. इसे मुर्दा हालत में ज़िंदा रखे रहता है. कभी-कभी तो ये प्राणी बरसों आखिरी सांस के सहारे टिका रह कर अगले इलेक्शन की प्रतीक्षा करता रहता है. उस वक़्त इसे अगर आश्वासन युक्त भाषण मिल जाये तो इसकी अदृश्य दुम हिलने लगती है और इसमें लगा संयंत्र फिर से काम करने लगता है.

पिछले चार-पांच वर्षों में २२ हजार से ज्यादा मिलें और फैक्ट्रियां बंद हो चुकी हैं. पहले ही हाथ का काम करने वाली एक बड़ी जनसंख्या बेकार हो चुकी थी और ये संख्या बढ़ कर अब अस्सी प्रतिशत हो चुकी होगी. लोग दाने-दाने को मोहताज़ हैं, तरस रहे हैं बुनियादी ज़रूरतों के लिए. बीस प्रतिशत आबादी को छोड़ कर लोग ग़रीबी और ग़रीबी रेखा से नीचे के स्तर पर जीने के लिए मज़बूर हैं. आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिए बंबई जैसी एडवांस महानगरी में भी अस्सी प्रतिशत लोग स्लम और गंदी बस्तियों में रहते हैं. इस देश के तीन चौथाई लोग सड़क, मैदान, गलियों, खेतों और अपनी पनाहगाह के आस-पास ही विष्टा त्याग करने को मज़बूर हैं. जहां तीन चौथाई लोग लाचारी और बेबसी का जीवन जी रहे हों वहां हर वर्ष करोड़ों टन अनाज और खाद्य सामग्री सड़ा कर फैंक दी जाती है कि कहीं अनाज सस्ता होकर अस्सी के पेट में न पहुंच जाये. ये कैसी व्यवस्था है, कैसा प्रजातंत्र है ?

यह इस देश का दुर्भाग्य है. ऐसे प्रजातंत्र को यहां का बुद्धिजीवी एन. ओ. सी. के साथ श्रेष्ठता का प्रमाण-पत्र भी देता है. आम आदमी का शोषण, बेबसी और मज़बूरी की पराकाष्ठ को देखकर लगता है कि शीघ्र ही कोई क्रांति जन्म लेगी, कोई विप्लव शुरू होगा. वैसे पिछली सदी इसी इंतज़ार में थम कर चली गयी.

मंज़र...

रोबोट ने ट्रक को रुकवाया और मुस्तैदी दिखाते हुए ट्रक का मुआयना करने लगा. अफ़सर की गाड़ी आकर पास रुक गयी. तभी ड्राइवर ने दो हरी पत्ती निकालीं ...नोट देखते ही रोबोट का मन लहलहा उठा.

रोबोट अफ़सर ने रोबोट की तरफ़ देखा और हाथ फैल गया - ड्राइवर ने एक और पत्ती का इज़ाफा कर रोबोट की मुट्ठी बंद की और ट्रक आगे बढ़ा दिया.

सरकार को जाने वाला पैसा रोबोटों की जेब में... महान देश की परंपरा का साक्षात्कार कराता ट्रक, जिसके पीछे राष्ट्रीय जुमला जड़ा है 'मेरा भारत महान है.'

आगे जाकर देश की महानता और ट्रक दोनों विलीन हो गये. थोड़ी देर बाद वायरलेस पर बड़े रोबोट ने संवाद किया और जीप को सड़क के बीचों-बीच लाकर खड़ा कर दिया. कुछ ही क्षणों में सामने से आता एक ट्रक दिखाई दिया. ट्रक जीप के पास आते-आते आहिस्ता हो गया. ट्रक से एक व्यक्ति नीचे उतरा - एक रोबोट को आड़ में ले जाकर कुछ वार्ता हुई. उसने नोटों की एक गड्डी रोबोट के हवाले की और व्यक्ति ट्रक में जाकर बैठ गया - ट्रक उसी प्रकार देश की महानता के दर्शन कराता आगे बढ़ गया.

आगे जाकर ट्रक एक सुनसान रास्ते पर मुड़ कर आहिस्ता हो गया. तभी ट्रक के आगे बैठे व्यक्ति की नज़र अस्सी पर पड़ी. वो कुछ सोच में पड़ गया. अस्सी घंटों से इस निर्जन में बस का इंतज़ार कर रहा था. परिवहन सेवा की एक बस वहां से गुज़री थी लेकिन हज़ार रोकने पर भी वो रुकी न थी और अस्सी निराश हो चुका था. कुछ दिन पहले ही उसे यहां एक फैक्ट्री में काम मिला था. वो ट्रक को रुकता देख उसकी ओर बढ़ा. ड्राइवर ने उसे अपने पास बुलाया और एक कनस्तरी थमाते हुए दूर इशारा करके पानी की ज़गह दिखाई, -'जा वो सामने से पानी भर ला इंजन में डालना है - जा फिकर न कर, जहां कहेगा छोड़ देंगे जा... अरे जा भाग के पानी ले आ...'

पानी दूर-दूर तक कहीं नज़र ही नहीं आ रहा है. लेकिन बेचारा गंतव्य तक पहुंच कर अपने बाल-बच्चों में शामिल हो जायेगा, इस आस में बेचारा जँहां-तहां भागा चला जा रहा है. उसके जाते ही ट्रक ढलान की ओर पीछे गया और झट से उसका पिछला हिस्सा खोला गया - एक ढकी-छिपी मारुति कार फट्टे के सहारे उतरी और हाइवे से होती हुई स्टेशन की तरफ़ मुड़ गयी. और ट्रक हाईवे पर आगे जाकर गायब हो गया.

लेखन : *लगभग ३० वर्षों से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, लेख व व्यंग्य लेखन.*

विशेष : *तीन दशकों से अधिक लेखक, निर्देशक और अभिनेता के रूप में रंगमंच, फिल्म एवं टेलिविजन पर सक्रिय. उत्तर प्रदेश सरकार के फिल्म एवं नाटक विभाग, भारत सरकार के गीत एवं नाटक प्रभाग (दूरदर्शन), हबीब तन्वीर के नया थियेटर तथा ए. टी. एन. में वरिष्ठ निर्देशक के रूप में लंबे अर्से तक काम किया. इस बीच विदेशों में भी फिल्मों का निर्देशन.*

संप्रति : *रंगाश्रम समांतर फिल्म एवं टेलेंट फॉउन्डेशन में निर्देशक.*

मुश्किल से पंद्रह-बीस मिनट ही हुए होंगे पेड़ों के झुरमुट के पीछे से अस्सी को पानी मिल गया था. जब वो लौटा तो ट्रक नदारत. इधर-उधर नज़र दौड़ाई लेकिन कहीं भी ट्रक नज़र नहीं आया. रात बढ़ती जा रही है - बेचारा बेबस है क्या करे. आती-जाती कारें, गाड़ियां भला उसे क्यों बैठने लगीं. कनस्तरी लिये वो ट्रक ढूंढ़ता निर्जन में ही चल पड़ा. शायद आगे जाकर कहीं मिल जाये.

अचानक पुलिस की जीपें, गाड़ियां सायरन बजाती सड़क पर दौड़ने लगीं. देखते-देखते सड़क पर जैसे भगदड़ मच गयी. दोनों ओर से गाड़ियों की आवाजाही बढ़ गयी. ट्रैफिक में फंसी गाड़ियों में बम-विस्फोट की चर्चाएं हो रही हैं.

स्टेशन पर एक मारुति कार में रखे बम से आधा स्टेशन उड़ गया था और एक आती हुई रेलगाड़ी के चार डिब्बे पटरी से उड़ गये थे. पूरी की पूरी गाड़ी पटरी से उतर गयी थी. सैकड़ों लोगों के शरीर के चिथड़े हर तरफ दीख पड़ रहे थे. आस-पास के वाहन तक उड़ गये थे. जान-माल का भारी नुकसान हुआ था.

हादसा हो जाने के बाद, पुलिस हरकत में आ चुकी है. कांस्टेबल से लेकर अफ़सर, अफ़सरों के अफ़सर मुस्तैदी दिखा रहे हैं. निकास के सारे रास्ते सील कर दिये गये हैं. हर गाड़ी, कार, बैलगाड़ी, यहां तक कि हाट से लौटते कुम्हार के गधों की भी तलाशी

ली जा रही है. सिर्फ तलाशी ही नहीं ऐसी सख़्ती से पूछ-ताछ की जा रही है कि गधे भी अपनी भाषा में मुंह उठाये अल्लाह मियां से फ़रियाद करने लगे हैं.

पूछताछ, तलाशी और घेराव में हज़ारों लोग फंसे पड़े हैं. कारवाही चालू है. मरे हुए लोगों की शिनाख़्त की जा रही है. अधमरे लोगों से प्रेस, टेलीविजन रेडियो के सक्रिय संवाददाता पूछताछ और इंटरव्यू करने से बाज़ नहीं आ रहे हैं. और पुलिस का हर डिपार्टमेंट इस समय काम पर लगा हुआ है... बम के अंदर कौन-कौन सी बम बनाने की सामग्री इस्तेमाल की गयी है इसकी जांच-पड़ताल में लग गया है. पहले हुए हज़ारों बम कांडो में से इस बम कांड की किस बम-कांड से रिश्तेदारी है पता लगाने में अफ़सर जी तोड़ मुस्तैदी दिखा रहे हैं. ये पुलिस, वो पुलिस, रक्षा पुलिस, सुरक्षा पुलिस, सीमा पुलिस परेशान है. सभी तरह की पुलिस चीटियों की तरह बिल से बाहर निकल आयी हैं.

राजनीतिक पार्टियों के नेताओं ने अपनी-अपनी टोपी झाड़ कर, अपनी खोपड़ियों को शोभायमान कर लिया है और अब वे भाषण-वक्तव्य आदि देने के लिए तैयार हैं. पुलिस, राजनीतिज्ञ, प्रेस अपनी-अपनी कल्पना शक्ति की ऐसी-तैसी किये हुए हैं. सभी ये जताने की कोशिश कर रहे हैं कि उन्हें देश से बेहद प्यार है और इस हादसे से उन्हें बहुत आघात लगा है. विपक्ष ने आधे घंटे के अंदर ही सरकार से इस्तीफे की मांग शुरू कर दी है. उसने ऐलान कर दिया है वो 'बंद' करेगा, पार्लियामेंट नहीं चलने देगा - देश का चक्का जाम कर देगा आदि आदि...

अस्सी के सामने अब कोई चारा नहीं है. पुलिस, नेताओं, प्रेस की दौड़ती गाड़ियां. वह घायलों को ढोती एंबुलेंस आदि को देख भयभीत हो चुका है. पुलिस की पकड़ा-धकड़ी पूछताछ जारी है. उसकी हिम्मत टूट चुकी है वो सुनसान में एक टूटे मकान में छिपने का प्रयास करने लगा - तभी एक पुलिस दस्ते ने उसे धर दबोचा. उसका इस निर्जन स्थान पर होना वैसे भी शक़ पैदा करता है. ज़वाब तलब के दौरान उसकी गाथा सुन कर तो और भी शक़ बढ़ गया. पुलिस के हाथ बटेर लग गयी थी. कनस्तरी समेत उसे थाने पहुंचा दिया गया.

दूसरे दिन समाचार पत्रों की सुर्ख़ियों में वह ग़रीब बेबस हीरो बन गया. अस्सी ने पिटाई के आगे, उसकी समझ तक में न आने वाले सारे जुर्म कबूल कर लिये थे. आतंकवादी क्या बला होती है इसका मतलब तक उसे मालूम न था. पर अब जब वह बम-कांड का एक्टिव सदस्य मुकर्रर हो चुका है तब ग्रामोफोन रिकॉर्ड पर सुई अटक जाने की तरह अपनी गाथा बिना पूछे भी दोहराने लगा - कि उसकी, फैक्ट्री में नयी-नयी नौकरी लगी थी. आख़िरी बस छूट जाने के कारण उसकी मुलाकात ट्रकवालों से हुई, उन्होंने पानी लाने के लिए कहा और जब वो पानी लेकर आया तो ट्रक गायब हो गया.

उसके बयानों और इकबालिया बयानों को लेकर तहकीकात शुरू हो चुकी है. पुलिस के हाथ बहुत महत्वपूर्ण सुराग लगा. ट्रक एक कच्चे रास्ते से अंदर गया था और उसी बिंदु से मारुति गाड़ी के चिन्ह मिले. मारुति के चिन्ह पहले कहीं भी न थे. मारुति के पहियों को अन्य चिन्हों से मिलाया गया. बात साफ हो गयी, कि मारुति गाड़ी और ट्रक का रिश्ता साफ नज़र आ रहा है - अस्सी अब बहुत अहम व्यक्ति हो गया है इस बम कांड के कारण. पुलिस अब उससे उसके विदेशों से संबंधों की तहकीकात कर रही है. बार-बार उसका पता पूछा जा रहा है, बेचारा अपना क्या पता बतलाये ! पहले जहां वो काम करता था वहां दो वर्षों से तालाबंदी चल रही थी. और उसे इसी के कारण खोली छोड़नी पड़ी. इस सड़क से उस सड़क दीवारों के साये में यह पनाह ढूंढ़ते फिरते. मजदूरी मिली तो कुछ खा-पी लिया. पुलिस, गुंडो आदि को भी कुछ न कुछ देना ही पड़ता था. अभी कहीं झोपड़पट्टी में उसके परिवार को शरण मिलने वाली थी, सिर्फ़ पैसा देना बाकी था. बात हो चुकी थी. इस नयी नौकरी से उसे आज कुछ पैसा मिला था. पुलिस कहीं उसके परिवार को भी न सताने लगे, इसलिए वह पुलिस को अपना उल्टा-सीधा पता बता रहा है. तहकीकात करने से पुलिस का उस पर शक़ और बढ़ गया है.

दो दिन बीत चुके थे. अस्सी जब नहीं लौटा तो उसके घर वालों की चिंताएं बढ़ गयी. उसकी घरवाली भगा आखिर उसे कहां ढूंढ़ती. पैसा कौड़ी भी न था पास में....भूख से बच्चे बिलबिला रहे हैं. वो रोती-कलपती उन्हें दिलासा दिला रही है कि बापू कुछ न कुछ लेकर आ ही रहा होगा. सड़क पर टकटकी लगाये बैठा है पूरा परिवार. कभी-कभी भगा सामने वाली टपरी पर जाकर लोगों से अपनी परेशानी बोल-बतिया लेती है. संवेदनावश टपरी वाला कुछ खाने को भी देता है. एक दो-बार के बाद अब उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही कि कुछ मांग ले. बेचारी भगा जाती है और खाली हाथ बच्चों के पास आकर सुन्न हो जाती है.

अभी-अभी उसे पता चला था कि कहीं स्टेशन पर बम-विस्फोट हुआ है जिसमें हज़ारों लोग मारे गये. वो सोचने लगी कहीं उसका आदमी तो... नहीं वो काम के लिए गया था. वो तो बस से जाता है. लोगों ने उसे पुलिस स्टेशन जाकर दरियाफ़्त करने को कहा. बेचारी जैसे-तैसे पुलिस स्टेशन गयी. लेकिन वहां उसकी कौन सुनता. चौकी की सारी पुलिस तो मंत्रियों, मुख्यमंत्री, वी. आई. पी., वी. वी. आई. पी. लोगों की सुरक्षा और बंदोबस्त में लगी है. उसका हुलिया देखकर, उसे किसी ने पास ही नहीं फटकने दिया. बेचारी रोती कलपती वापिस आ गयी.

आते ही उसे एक और विनाशलीला का सामना करना पड़ा. नगरपालिका का विध्वंसक तोड़ू दस्ता, अपने सिपाहसलारों, हथियारों और बंदोबस्त के साथ झोपड़पट्टी पर बुलडोज़र चला रहा था. खुशहाली के दुश्मनों की पनाह उनकी आंखों के सामने मिटाई

जा रही है. जिधर देखो दर्दनाक चीख, पुकार सुनाई देती है. इस भगदड़ और मारपीट में लोग अपना-अपना सामान लेकर ऐसे भाग रहे हैं जैसे किसी दुश्मन देश ने हमला कर दिया हो.

समाज के त्यागे हुए कबाड़, टीन-टप्पड़ आदि से इन मज़बूर ग़रीबों के सपनों के महल, देश को खुशहाल दिखाने के लिए सौंदर्यीकरण की योजना के अंतर्गत ध्वस्त कर दिये गये . इन बेचारों की कौन सुनता और मदद करता. अभी कुछ दिन पहले ही तो चुनाव हुए हैं. और अब इस श्रेष्ठतम प्रजातंत्र में नेताओं का लोगों से अगले पांच साल तक सरोकर ख़तम हो चुका है.

ये मज़बूर इस देश की धरती और आसमान के बीच "कहां जायें ?" का सवालिया निशान बने हुए हैं. ऐ प्रजातंत्र, ऐ इस देश के संविधान, ऐ रहनुमाओं, इस देश की योजनाओं, ऐ मानवतावादियों, ऐ विदेशी कारों में घूमने वाले और एयरकंडीशन अट्टालिकाओं में बसने वाले धर्म गुरूओं, वेदपुराण धर्मग्रंथों का उपदेश देने वाले महात्माओं बताओ ये कमज़ोर कहां जायें ?

...भग्गा पागलों की तरह से अपने बच्चों को तलाश रही है. चीखते-पुकारते उस पर बेहोशी तारी होने लगी है.

वो कभी-कभी सुन्न हो शून्य दृष्टि से इस ध्वस्त बस्ती को देख सुबक पड़ती है जहां कभी पनाह लेने का सपना उगा था. वो अर्ध-विक्षिप्त सी भगवान से प्रार्थना कर रही है, 'हे भगवान मुझे ज़िंदा रखना. मेरे बच्चे... कहां चले गये... कहां चले गये ऽ ऽ ऽ ?' वह बड़बड़ाये जा रही है. भूख प्यास से अब उसमें खड़े होने की भी शक्ति नहीं रह गयी है. उसकी आवाज़ रुंध गयी है. "भगवान मुझे अपने बच्चों के लिए ज़िंदा रखना... भूखे प्यासे न जाने कहां होंगे.... मारना ही है तो उन्हें मेरी आंखों के सामने, मेरे से पहले मार देना... हां मेरे पीछे न जाने उनका क्या हाल होगा... ये भी तो न जाने कहां खो गये... सब कहां खो गये..."

उसके बच्चे नगरपालिका के सूरमाओं से भयभीत हो कर, पास के गंदे नाले में जा छुपे थे. बड़ा लड़का किसन आठ-नौ का है और छोटा सिर्फ डेढ़ वर्ष का ही है. किसन नाले में पड़े एक बड़े पत्थर पर न जाने कब से टिका हुआ है. उसके पैर थकान से कांपने लगे हैं. वह गिर जाने के डर से नाले की दीवार से चिपटा हुआ है. नाले के पानी के बहाव को देख कर वह डर जाता है कि कहीं गिर न पड़े. शुरू में उसने अपने छोटे भाई को भी नाले में घसीटने का प्रयास किया था. लेकिन गिर जाने के भय से उसे वही मेढ़ पर रोक दिया. वो रोता-बिलखता बेसुध मेढ़ पर ही पड़ा है. किसन नाले से निकलने का प्रयास कर रहा है. कभी-कभी वो अम्मा-बाबू को आवाज़ लगाता है लेकिन इस तरफ कोई भी तो नहीं है जो उसकी आवाज़ सुन कर मदद कर सके.

किसन असहनीय थकान से कांपने लगा है. उसका धीरज और हिम्मत टूटती नज़र आ रही है. लगता है वो सम्हल नही पायेगा. उजड़े हुए लोगों को अब यहां बैठने भी नहीं दिया जा रहा है. पुलिस और नगर पालिका के अधिकारीगण उन्हें शीघ्र उस स्थान से चले जाने का आदेश दे रहे हैं. उन्हें शक़ है कि अगर इन लोगों को वहां से भगाया नहीं गया तो ये लोग फिर से वहां डेरा डाल देंगे. लोगों की जान पर बनी हुई है. आखिर ये लोग कहां जायें, क्या करें ? सुबह से अब तक लोगों को पानी भी नसीब नहीं हुआ. कुछ लोगों ने तो ख़बर लगते ही सामान वग़ैरा निकाल लिया था लेकिन अधिकतर लोगों के सामान समेत झोपड़ों पर बुलडोज़र चला दिया गया था. लोग खाली हाथ अपनी किस्मत कोस रहे हैं. तंग आये लोग अपने बच्चों और परिवार के साथ धूप और गर्मी में बैठे हैं, तो बैठने भी नहीं दिया जा रहा है. अजब निज़ाम है यह ?

भग्गा को मृत्यु पास आती नज़र आ रही है. उसने अपने अंदर एक बार पूरी शक्ति बटोरी और किसन को आवाज़ लगायी. मां की आवाज़ सुनते ही किसन जान छोड़ कर चीख पड़ा, 'मां मैं नाले में हूं मां', उसकी आवाज़ का अनुसरण करते हुए, भग्गा भागने लगी. न जाने उसमें कहां से शक्ति जाग उठी. छोटा भी मां की आवाज़ को सुनकर उठ खड़ा हुआ. भाग कर उसने उसे सीने से लगा लिया.

किसन को जैसे-तैसे उसने नाले से निकाल लिया. नाले की गंदी गैस और धूप में अधमरा हो गया था वो. भग्गा ने दोनों हाथों से अपने बच्चों को ममता और प्यार के भावनिक संसार में समेट लिया. कुछ क्षण वो सब, सब कुछ भूल से गये.

पास ही वाटर वर्क्स के टूटे पाइप से झोपड़पट्टी की जीवन धार बह रही थी. भग्गा ने अपने बच्चों का मुंह हाथ धोया और पानी पिलाया. कल से उसने भी पानी तक नहीं पिया था. पानी के सेवन से कुछ चैन मिला.

थोड़ा होश में आते ही किसन ने बाबू के बारे में पूछा. बेचारी क्या बतलाती. उसने दिलासा दिया कि बाबू आ जायेंगे. अचानक बस्ती के मलबे की तरफ देखते ही उसे अपने सामान की सुध आयी. उसने किसन से बार-बार सामान के विषय में जानना चाहा - लेकिन अब उसके मुंह से कुछ और ही अस्फुट स्वर सुनाई दे रहे हैं. - "मां भूख लग रही है... मां... भूख..." वो बिलखते हुए बेसुध होने लगा. कई दिनों से रोटी तो किसी ने देखी नहीं थी. छोटा भी बेसुध सा आंखें खोले एकटक उसकी ओर देख रहा है. वह डर गयी अपने ज़िगर के टुकड़ों को निष्प्राण होते देख. वह बिजली की तेजी से उठ खड़ी हुई. उसे अपने बच्चों और ख़ुद को ज़िंदा रखना है तो इसी क्षण कुछ करना होगा.

दूर एक कॉलोनी नज़र आ रही है. गगनचुंबी इमारतों का बड़ा लंबा-चौड़ा सिलसिला है. वह बच्चों को घसीटती हुई उसी ओर चल पड़ी.

वह सामान भूल गयी. दुनिया की हर चीज़ इस वक़्त वह भूल गयी है. बुदबुदाती बच्चों को दिलासा दिलाती, बढ़ी चली जा रही है, जैसे आपात्काल में मरीज़ को लिए एंबुलेन्स दौड़ती चलती है.

"बस थोड़ी ही दूर तो है... कोई न कोई ज़रूर मदद करेगा. ... हां मैं जानती हूं मेरे बच्चों तुम्हें भूख लग रही है. बस अभी कुछ न कुछ मिल जायेगा... भगवान हमें बचा लो... भूख से तड़प रहे हैं मेरे बच्चे... हां... हां थोड़ी दूर है... बस्ती... वो क्या... आ गयी... न जाने वे... कहां है... वह हमें अकेले छोड़ कहां चला गया... होता तो क्या ये हाल होता हमारा... हिम्मत करो बस... थोड़ी दूर... बस..."

कॉलोनी में प्रवेश करते ही उसने एक बंगले पर आवाज़ लगायी. लेकिन कोई उत्तर नहीं आया. दूसरे दरवाज़े पर जाकर पूरी शिद्दत से खटखटाया. एक महिला ने दरवाज़ा खोला और इन्हें देखते ही वह क्रोध में आगबबूला हो गयी, "चल-चल ! तेरी हिम्मत कैसे हुई इस तरह से दरवाज़ा खटखटाने की ? चली जा नहीं तो ..."

उसकी हिम्मत पस्त हो गयी. नहीं वह कोशिश करेगी अपने बच्चों और खुद को बचाने की. उसने दो-तीन घरों पर आवाज़ लगायी -"मेरे बच्चे भूख से तड़प रहे हैं कोई मदद करो - हमने तीन दिनों से खाना नहीं खाया है. हमें बचा लो. आपके बच्चों को हमारी दुआएं लगेंगी. मेरे बच्चे भूखे हैं खाने को दे दो..."

तभी एक संभ्रांत महिला जो अपनी गाड़ी घर के बाहर पार्क करने जा रही थी. गाड़ी रोक कर भगा को ग़ौर से देखने लगी. उसने फट से गाड़ी लगायी और बाहर आ गयी. भगा ने बड़ी उम्मीद से याचना दोहराई. अश्रु भरी आंखें छलक पड़ीं लेकिन उस युवती पर उलटी ही प्रतिक्रिया हुई.

"खबरदार ये एक्टिंग मुझे न दिखाना - चल दूर हट तुम लोगों को काम करते आफत आती है. मज़े से भीख मांग लो - भीख मांगना, चोरी चकारी करना और बच्चे पैदा करना - बस ये ही काम हैं तुम लोगों के. चलो भागो यहां से. सरकार ने भीख मांगने पर पाबंदी लगाई है... चली नहीं..."

युवती की फटकार से वो सुन्न हो गयी. एक दूसरी युवती जो दूसरी मंज़िल से ये सब देख रही थी उसने भी प्रतिक्रिया की,- "इन लोगों की ही वज़ह से देश तरक्की नहीं कर रहा है. एक दिन मैं अपने विदेशी पार्टनर्स के साथ मार्किटिंग के लिए गयी - साले भिखारियों के हज्जूम इकट्ठा हो गये, हमारे इर्द-गिर्द. हज़ार दुत्कारने पर भी चिपटे ही रहे."

दोनों महिलाएं आपस में बातें करने लगीं. तभी घर का नौकर जिसने खिड़की से देख लिया था और किचन से कुछ खाना लेने चला गया था, वह चार-पांच रोटी और सब्जी लिये बाहर आया. उसे बीबीजी के आ जाने का ज्ञान न था. शायद वे इस समय घर आती भी नहीं हैं. नौकर के हाथ में रोटियां देख कर वे उस पर टूट पड़ीं, -"हरामखोर तुझे किसने कहा रोटी देने के लिए... बड़ा दाता-दानी बन रहा है." उसने गुस्से में उसके हाथ से रोटियां छीन पास बैठे कुत्ते के सामने फेंक दीं. कुत्ते ने रोटी सूंघ कर छोड़ दीं.

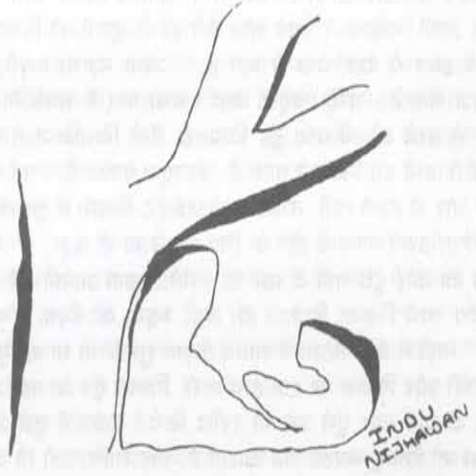

दूर जाती भगा ने देख लिया था - उसमें एक विद्युत का संचार हुआ और उसने रोटियां और सब्जी ज़मीन से उठा ली.

मालकिन ने नौकर से चौकीदार को तलब किया.

"देखा कैसे नौटंकी कर रही है, अपने कहे को सही बताने के लिए. दरअसल ये औरतें सालियां दिन में मालूमात इकट्ठा करती हैं और रात में इनके मर्द आकर चोरी करते हैं."

भगा जान छोड़ अपने बच्चों को घसीटती भागी चली जा रही है, जैसे कुबेर का खज़ाना उसके हाथ लग गया हो. वह कॉलोनी से बाहर निकलने वाली ही थी कि पीछा करता चौकीदार आ गया. -"रुक हरामज़ादी, ज़रा सा मैं मर्दाना काम करने चला गया तो अंदर घुस आयी- मुझे डांट खिलवा दी." भगा रोटी सीने से लगाये बच्चों को घसीटती निकल गयी. जैसे उसने कोई किला फतह कर लिया था.

अब वह अपने छोटे बच्चे के लिए दूध की फिक्र में बाज़ार की ओर निकल आयी - बच्चे ने रोटी का एक-आध ही लुकमा बड़ी मुश्किल से खाया था. वह अभी दूध पर ही था. कभी-कभार बिस्किट, दाल-चावल टूंग लेता. कई दिनों तक दूध न मिलने से वो बीमार भी हो गया था. इधर कई घंटे से वो तपती धूप में बेहोश भी पड़ा रहा था. भगा सोच रही है किसी डॉक्टर से मिन्नत कर लेगी. शायद तरस आ जाये. लेकिन दूध के लिए कहीं से कुछ पैसे मिल जाते तो ?...

बेचारी बीमार बच्चे को सामने रख आने जाने वालों के सामने गिड़गिड़ाती, याचना करती. बच्चे की हालत निरंतर ख़राब होती जा रही है. आते-जाते लोगों ने कुछ पैसे उसकी झोली में डाले. उसने तुरंत अपने बड़े लड़के को वे पैसे दूध लाने के लिए दिये और प्रतीक्षा करने लगी.

तभी इस सड़क पर कॉलोनी वाली संभ्रांत युवती की गाड़ी ठीक उसके सामने आकर रुकी. सड़क पर ट्रैफिक अधिक था. महिला

ने बाहर की ओर झांका तो उसे भगा अपने बच्चे के साथ बैठी नज़र आयी. महिला ने अपने साथ बैठी दूसरी युवती को दिखाया, -''अरे इधर ये देख, देख ये वही है.'' उसने मज़ाक करते हुए आवाज़ लगायी -''क्यों एक्ट्रेस, वाह ! क्या बात है साली ने इस छोटे से बच्चे को भी क्या ट्रेंड किया है, कैसे सिसकियां ले रहा है, जैसे अभी दम निकलने वाला है. वंडरफुल एक्टर है.'' यह कह दोनों जोर से हंसने लगीं. तभी किसन एक टूटे गिलास में दूध लेकर आ गया. उसने शाबाशी लेने के लिए अपनी मां से कहा, -''मां दो रुपये का कोई दूध नहीं दे रहा था - मैंने... एक आदमी की जेब से पांच रुपये निकाल लिये... हां, ले... भइया को पिला... गरम है...'' गाड़ी में बैठी महिला ने शायद ये सब सुन लिया था वह गुस्से से उतरी और गिलास पर एक हाथ मारा. गिलास दूर जा पड़ा और साथ दो-चार लात घूंसे उसे भी रसीद किये. -''चल मैं तुझे अभी पुलिस को देती हूं बास्टर्ड जेब काटता है, चोर साला.'' वो तो कहो पीछे वाली गाड़ियों के हॉर्न बजने लगे थे, ट्रैफिक चल पड़ा था. उसे भाग कर अपनी गाड़ी में जाना पड़ा. वर्ना किसन को तो वह मार ही डालती. दम तोड़ते बच्चे से नज़र उठा कर भगा ने महिला को देखा. उसमें भी पूरी दुनिया को भस्म कर देने का आक्रोश जागा - लेकिन अपने दम तोड़ते बच्चे की ओर नज़र डालते ही वह बेबस हो गयी, वह तड़प कर रह गयी - ये वैसी ही बेबसी की कैफियत है. इस मुल्क के आम-आदमी की बेबसी से मेल खाती है. अब उसमें इतनी भी शक्ति न थी कि चिल्ला कर अपना रोष प्रकट कर सके या रो भी सके.

किसन ने गिलास में बचा कुछ दूध अपने भाई के मुंह में डाला. बच्चे ने दूध की बूंदें मुंह में पड़ते ही आंखें खोल दीं. किसन चिल्लाया, ''मां भइया ने आंखें खोल दीं, मैं और दूध लाऊंगा... हां... और...'' नन्हा सा बेजबान कुछ कहना चाह रहा होगा, लेकिन वह अपनी यात्रा के अंतिम बिंदु पर 'मां' कहने की भी स्थिति में नहीं है. अपनी खुली आंखों से अपनी मां और भाई के दृश्य अंकित करते करते उसका कैमरा रन आउट हो गया.

दुर्भाग्य है कि इस देश में इस इक्कीसवीं सदी में इस फिल्म की प्रॉसेसिंग और पॉजिटिव बनाने की अभी भी कोई लैब नहीं है. निगेटिव इंसान की ज़िंदगी के साथ सड़-गल जाता है, ख़तम हो जाता है कभी नुमायां नहीं होता.

❒

हालांकि बम-कांड की जिम्मेदारी ली जा चुकी थी. लेकिन पुलिस अस्सी के पकड़े जाने के बाद अपनी मुस्तैदी का सबूत देना चाहती थी. अस्सी ने सारे जुर्म भी स्वीकार कर लिये थे.

अस्सी का कोई 'पता' तो था नहीं. हां... गंदी बस्ती में पनाह मिलने की उम्मीद में उसका परिवार बस्ती के पास ही डेरा डाले हुए था. यही उसका पता था. लेकिन वह दुख झेलते परिवार को और मुसीबत में नहीं डालना चाहता था. इसलिए वह हमेशा पुलिस को इस बस्ती का पता नहीं देता था. लेकिन इधर रह-रह कर उसे अपने परिवार की याद सताने लगी - सोचता कैसे गुज़र-बसर कर रहे होंगे वे लोग... क्या कुछ बीत रहा होगा उन बेचारों के साथ... इंतज़ार कर करके पागल हो चुकी होगी उसकी पत्नी और बच्चे जिनसे उसे बहुत लगाव था. आज की पूछ-ताछ में उसने आखिर उस बस्ती का सही पता बतला ही दिया - कि उसे अपने बच्चों को देखने का शायद मौका मिल जाये.

लेकिन पुलिस का शक़ उस पर और पुख़्ता हो गया, क्योंकि तहकीकात से मालूम हुआ कि वह बस्ती कुछ दिन पहले ध्वस्त की जा चुकी थी. पुलिस का मानना था कि हिरासत में रहते हुए भी उसे कोई गाइड कर रहा है. वर्ना उसने उस बस्ती का ही पता क्यों बताया जिसे कुछ दिन पहले ध्वस्त कर दिया गया था. पुलिस ने रिमांड की अवधि बढ़वा ली और अब उस पर थर्ड डिग्री इस्तेमाल किया जाने लगा. और अब तो वह पूरी तरह से आतंकवादी साबित हो चुका है.

जिन लोगों ने बम-कांड की ज़िम्मेदारी ली थी उन्हें न तो पकड़ा गया और न ही उनसे कुछ पूछा गया. हज़ारों के मारे जाने, अरबों के नुकसान, भय और आतंक फैलाने के जुर्म, देश-द्रोह करके कबूल कर लेने पर भी. राजनीतिक कारणों से उन पर अभी तक कोई कार्यवाही नहीं हुई थी, कि कहीं दूसरी राजनीतिक पार्टियां इसका फायदा न उठा लें. वोट की राजनीति में बम-कांड के ज़िम्मेदार लोग सीना तान के अपनी ताक़त का एहसास करा रहे हैं. और दूसरी तरफ अस्सी मार खा-खा कर अब शायद मरने के करीब है.

अस्सी के बारे में अभी हाल की तहकीक़ात से पता चल चुका था कि वो एक कपड़ा मिल में फोरमैन था. मिल में तालाबंदी के बाद मालिकान उसे मौका पाते ही बेच कर अमेरिका चले गये थे और मिल की ज़गह खरीदने वालों ने लोगों से मिल के मकान आदि खाली करवा लिये. नौकरी और छत दोनों चले गये. करीब दो-सौ मिलें बंद हो चुकी थीं और लोग बेसहारा हो चुके थे. अस्सी को भी एक अरसा हुआ था, कहीं काम-धाम न मिला था - कुछ दिन पहले ही यह नौकरी मिली तो ये कांड हो गया. पुलिस के पास सारे तथ्य आ चुके हैं लेकिन वह तो इसे ख़तरनाक आतंकवादी साबित कर चुकी थी - अफ़सर परेशान हैं. कुछ दिन पहले ही पुलिस कस्टडी में एक मौत हो चुकी थी. वह मसला अभी ठंडा भी न पड़ा था कि अस्सी की हालत ख़राब हो गयी.

पुलिस आखिर क्या करती - एक दिन अख़बारों में सुर्ख़ियां थीं - 'ख़तरनाक आतंकवादी पुलिस की हिरासत से भाग निकला और शक़ किया जा रहा है कि वह किसी बाहर के मुल्क में जा चुका है.'

...पांच वर्षों से अधिक समय बीत चुका है. सबकी ज़िंदगी में निर्धारित परिवर्तन आ चुके हैं. जैसा कि हम अक्सर देखा करते

हैं. अस्सी की बेबसी और वक़्त ने उसका जो मेकअप किया है वह घूरे पर वर्षों से पड़े किसी जंग लगे कनस्तर की तरह से ही था जो जंग से गल-सड़ गया था और अब जिसकी टूट-फूट की मरम्मत की गुंजाइश ख़तम हो चुकी थी. अस्सी के जख़्म नासूर बन चुके थे. हाथ-पैर टूट चुके थे. किसी के मर जाने के बाद उसकी एक बैसाखी उसे मिल गयी थी और वह उस पर लटक-लटक कर सड़क के एक सिरे से दूसरे सिरे तक, जहां लोगों की आवाजाही रहती पहुंच जाता.

वह कभी-कभी भीख मांगना भूल कर आती-जाती भीड़ में अपनी पत्नी और बच्चों को तलाशता रहता. रोज़ उसमें एक आस उगती और मर जाती. और फिर से इन्सान को ज़िंदा रहने के लिए मज़बूर कर देती.

शायद इसी आस ने भग्गा को भी जीने के लिए मज़बूर किया होगा. लेकिन पिछले पांच वर्षों में उसमें रोटी की एवज़ इतनी बीमारियां लग चुकी हैं कि अब वह ज़िंदा रह पायेगी या नहीं, यह कह पाना बहुत मुश्किल है. रंडियों की इस बस्ती में वह सस्ती गिनी जाने वालियों में से थी. बीमारी जब बदन पर झांकने लगी तो उसे वहां से निकाल दिया गया. अब वो अपनी रोटी कमाने लायक नहीं रह गयी थी - किसन आवारा होने के अलावा और क्या बन सकता था. वह पंद्रह का हो चुका था और आवारा लड़कों के साथ स्टेशन पर अड्डा जमाये रहता - हां कभी कभार वह अपनी मां की सुध ले लेता था.

आज देशव्यापी हड़ताल थी. और ऐसे में बड़ी मुश्किल हो जाती है गरीबों, मुफलिसों और भिखारियों के लिए. क्योंकि लोग सड़क पर निकलते ही नहीं. अक्सर इस तरह के लोग स्टेशन पहुंच जाते हैं - ताकि गाड़ियों के यात्री बचा-खुचा खाना या पैसा-धेला दे दें.

एक गाड़ी के रुकने पर अचानक प्लेटफॉर्म पर भगदड़ मच गयी. दर्जनों लोग डिब्बों से उतरकर किसी को मार रहे हैं, 'साला चोर ! हरामज़ादा !!' आने जाने वाले भी लात घूंसा जमा कर अपना फर्ज़ अदा कर रहे हैं. बेचारा तड़प रहा है. उसकी चीख के साथ ही एक औरत उसे बचाने की ख़ातिर उस पर अपने शरीर की आड़ किये हुए है. लेकिन लोगों का मारना-पीटना जारी है. औरत दया की भीख मांग रही है, मिन्नतें कर रही है. दूर खड़ा अस्सी गौर से इन्हें देख रहा है- उसकी सांस भारी हो रही है. लगता है जैसे वे सारे प्रहार उसी पर हो रहे हैं. वह सोच रहा है कि अगर उसका लड़का ज़िंदा होगा तो इतना ही बड़ा हो चुका होगा. अचानक अस्सी में उसके प्रति सहानभूति जाग गयी, प्यार उमड़ आया. वह बैसाखी लिये आगे बढ़ा, लोगों से मिन्नतें करने लगा...साब बच्चा है इतना तो मारा है बेचारे को - छोड़ दीजिए - हट जाइए - बस बहुत हो गया - उसने बैसाखी की आड़ बच्चे को दे दी. गाड़ी ने सीटी दे दी. यात्री-गण भाग कर चढ़ गये.

लड़के और औरत पर बेहोशी तारी है. अस्सी ने एक पानी की गंदी सी बोतल निकाली और लड़के के मुंह में पानी डाला... औरत को भी पानी पिलाया. वे दोनों तनिक होश में आये. बूढ़े ने हिदायत दी, -"अरे जल्दी उठ ले इसे, पुलिस आ गयी तो मुश्किल में पड़ जाओगे. चलो उठ लो." बूढ़े ने भी हाथ का सहारा दिया और प्लेटफॉर्म से बाहर ले आये. धूप तेज थी. वे थोड़ी दूर एक बरगद के पेड़ के नीचे उसे ले आये.

बूढ़े ने नज़र भर कर उस लड़के को देखा और फिर उस औरत को. उसे आभास तो हो गया है कि कहीं ये उसकी ही पत्नी और लड़का है. उसने फिर भी जतन से काम लिया. -"मेरा बेटा भी इतना ही बड़ा हो गया होगा. किसन नाम था उसका." लड़का और वह स्त्री एकदम से चौंक पड़े. "हां इसका नाम भी किसन है मेरा ही बेटा है."

अस्सी आश्चर्यचकित सा उनकी ओर देखने लगा, "कहीं तुम्हारा नाम भग्गा तो नहीं."

"हां मैं भग्गा हूं कितना बदल गये हो तुम !" यह कह कर भग्गा अस्सी से लिपट गयी, -"ये क्या हाल बना लिया है तुमने... किसन ये तेरे बाबू हैं रे..." वक़्त ने और हालात ने उन्हें इतना बदल दिया था. सब एक-दूसरे को अजनबी लग रहे हैं. लेकिन आत्मीयता की आंख उन्हें कब का पहचान चुकी थी. उन्होंने एक दूसरे को जकड़ लिया. भग्गा रुंधे गले से बुदबुदाई -"ईश्वर तूने मिलाया भी तो इस हाल में, इस तरह."

किसन बाप के सीने से लगा बिलख पड़ा, -"कहां चले गये थे बाबू... हमें छोड़ के कहां चले गये थे ? बाबू यह तो तूने आज देखा है - सच बाबू मेरी कोई भी हड्डी साबुत नहीं है. बाबू बहुत मारते हैं लोग, पुलिस. मां को भी रंडी बाज़ार में कई बार पिटना पड़ता था. कभी पुलिस, कभी लोग मारते थे. बहुत मारती है दुनिया हमें... मालूम है. दूध भरे गिलास में हाथ मार कर गिरा दिया था नहीं तो भइया नहीं मरता - कई दिनों की भूख से वह तड़प रहा था - वह भूख से मर गया..."

अस्सी सुन्न हो गया था. और अचानक उसमें क्रोध की ज्वाला प्रज्जवलित हुई... उसने बैसाखी एक तरफ फेंक दी और एक पत्थर उठाया... उसने अपनी पूरी ताकत से वह पत्थर उधर से पास होने वाली एक लोकल ट्रेन पर दे मारा. जैसे वह बदला ले रहा हो - इस बेरहम समाज से, इसकी और ज्यादतियों से, इस मुल्क की व्यवस्था और कानून से, यहां के प्रजातंत्र और मानवतावादी दोगलों से, यहां की सभ्यता-संस्कृति और इतिहास से और उस धर्म से जो इन्हें नपुंसक बनाये हुए है. इस बीसा के खिलाफ अस्सी की बगावत का यह पहला पत्थर है. अस्सी की युद्ध घोषणा है यह पत्थर !

जे.एन.१, ६४ बी/३, सेक्टर-९,
वाशी, नयी मुंबई-४०० ७०३.

रोशनी का अहसास

✍ भोला पंडित 'प्रणयी'

मैं टूट-टूट कर
बिखरता हुआ एक पुरुष हूं
मुझमें पिघलती रही है -
मेरी ईर्ष्या, मेरी पशुता,
मेरी कामनाएं,
विसर्जित होती रही हैं एक स्वेद बिंदु में.
अब मेरी मानसिकता
चिंता के पोखर में डूब रही है,
जहां हर क्षण बंद होती खिड़कियां हैं.
कहीं गिर चुकी हैं
मेरी इच्छाओं की पंखुड़ियां
अब उसकी
जीवन के व्याकरण बीच
स्वर-व्यंजन के
संधि-विच्छेद कर रहा हूं.
नहीं जान सका मैं
गृहस्थ-ऋतुओं के स्वभाव
अपनी ही बेचैनी के पंख से
सुखाता रहा हूं जीवन का पसीना.
अब हमें याद नहीं होतीं
अपनी ही स्मृतियां
अंधेरी दुर्गम रातों में
तुम्हारे होने की रोशनी !

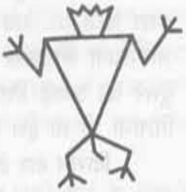

एक परिचय

एक प्रौढ़ा
अपनी अस्मत का सौदा
जिस हुस्नोखूबी के साथ कर लेती है
नवोढ़ा झिझकती है.
मुल्क के अध्येताओ,
संवाददाताओ, नेताओ !
सरहदी जवानों से कह दो
कि अब वह मेरी रक्षा न करें,
खून का एक कतरा भी न बहावें.
क्योंकि अब मैंने
एक बलात्कारी सभ्यता को जन्म दे दिया है,
अब मेरा कौमार्य
कोई भंग नहीं करेगा
अब मैं पच्चीस की नहीं
पचपन की हो गयी हूं
मैं भारतीय स्वतंत्रता हूं.

✉ बंधु सदन, गीतवास, अररिया-८५४३१२ (बिहार)

ग़ज़लें

✍ राजेंद्र वर्मा

हर वक़्त का यूं रोना अच्छा नहीं लगता,
हम को नयन भिगोना अच्छा नहीं लगता ।
गांधी भी लापता है, नेहरू भी लापता,
दीवारोदर का कोना अच्छा नहीं लगता ।
मेहनत तो जायेगी-ही, लागत भी जायेगी
बंजर में फ़सलें बोना अच्छा नहीं लगता ।
बच्चा अनाथ है वो, शायद अवैध भी,
है तो बहुत सलोना, अच्छा नहीं लगता ।
दुनिया का दर्द जिसमें समाया नहीं 'राजेंद्र,'
उस ज़िंदगी का होना अच्छा नहीं लगता ।

❖ ❖ ❖

झूठ बोलो मगर सत्य की ही तरह,
कल्पनाएं करो कथ्य की ही तरह ।
एक रोटी बहुत है हमारे लिए,
खाओ तर माल तुम पथ्य की ही तरह ।
फ़िक्र करते रहो, खून पीते रहो,
स्वांग करते रहो कृत्य की ही तरह ।
कथनी-करनी में अंतर बनाये रहो,
हर कथा में रहो कथ्य की ही तरह ।
मालिके-हिंद 'राजेंद्र' बनकर रहो,
पेश आओ मगर भृत्य की ही तरह ।

✉ ३/२९ विकास नगर, लखनऊ २२६ ०२२

दो गीत

✍ रासबिहारी पांडेय

(१)

लगते हो जब कभी पराये
बरबस मन बिफर बिफर आये
फुफ्कारते से दिन, डंसती सी रातें
कब तक अंगेजें हम घातों पर घातें
रोम रोम सिहर सिहर जाये....बरबस मन....।।

हादसों की अपने लंबी अटूट कड़ियां
बिसराये बिसरें ना कितनी सारी घड़ियां
दिल दर्पण चिहर चिहर जाये....बरबस मन....।।

रोशनी अंधेरे-सी, क्षण फीके फीके
डबडबाई आंखें कब दिन होंगे नीके
युग जैसा हरेक पहर जाये....बरबस मन....।।

(२)

टूट चुके सारे तटबंध
लोग हुए अब तो निर्बंध ।

कौन करे किससे नैतिकता की बातें
अब तो चतुर्दिक भौतिकता के नाते
मूल्यों, आदर्शों की बातें बेमानी
शर्तों समझौतों में घुटते संबंध....लोग हुए....।।

अपने में गुम कौन दूजे की सोचे
मन की दीवारों पर बढ़ती खरोंचे
सूनी सूनी सी एहसासों की गलियां
फैली सी एक उदास गंध....लोग हुए....।।

सहसंपादक, 'बराबर' पाक्षिक,
पोस्ट बॉक्स नं.-८०४६, बिलेपार्ले (प.), मुंबई-४०० ०५६

दो ग़ज़लें

✍ म. ना. नरहरि

पत्तों को हवाएं छेड़ती हैं,
शाखों को शरारत बांटती हैं ।
आंधी में रहे बच्चे सलामत,
मांओं की सदाएं गूंजती हैं ।
माथे पर मेरे ईमां लिखा है,
हाथों में दुआएं खेलती हैं ।
पानी क्यों ये सूरज सोखता है,
ये सच सारी नदियां जानती हैं ।
करतूतें ये काली शहर वाली,
आंखों को भी अक्सर खोलती हैं ।

कौन कहता है ये जहां अच्छा,
हादिसे रोज़ ही कहां अच्छा ।
तिश्नगी आदमी के ज़ख्मों में,
और है नीला आस्मां अच्छा ।
ज़ख्म अपनों ने सब बनाये हैं,
फिर भी मेरा ये आशियां अच्छा ।
ज़िंदगी जानती है लाचारी,
बेबसी में टूटा मकां अच्छा ।
रोज़ पीना बहकना मजबूरी,
मरना ऐसे नहीं यहां अच्छा ।

श्रीपाल-वन, १सी/जी१०, खारोडी नाका, बोलिंज, विरार (प.), जिला-ठाणे ४०१ ३०३

लघुकथाएं

निर्णय

✍ यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'

वह खतरनाक पश्चिमी जंगलों में घूम कर लौट आया. उसके मित्रों ने जाकर कहा कि हमें वह अपने सच्चे अनुभव और रोमांचकारी घटनाएं सुनाये.

उसने इत्मिनान से कहा, "मैंने शेर, चीते, बाघ, भालू देखे. एक बार एक शेर मेरे बहुत करीब दहाड़ा. मैं घबरा गया. भाग कर झाड़ियों में छुप गया. शेर पास से गुज़र गया. आक्रमण करता तो गोली चला देता. परंतु इसी बीच एक मोटे बड़े अजगर ने मुझे जकड़ने की चेष्टा की. बड़ी जद्दोज़हद से मैंने उसके फंदे से छुटकारा पाया. मुझे कई खरोंचें आयीं.

एक दफ़े तो एक बंदर मेरी रायफल उठा कर पेड़ पर चढ़ गया. कितने ही केले खिलाये तब उसने उसे फेंकी. ग़नीमत है कि उसने तोड़ी नहीं. फिर आदिवासी इलाके में रहा. जहां रात को रोशनी करो तो बिच्छू आ जाते हैं. तरह-तरह की छिपकलियां, ज़हरीलें कीड़े, लकड़बग्गे, भेड़िये...उड़ने वाले सांप...! चंद जानवरों को छोड़ कर सारे पशु प्रायः हिंसक और आदमखोर ही होते हैं."

"सुना है कि तूने पश्चिमी जंगल में रहने के लिए मकान बनाया है, वहां तो तेरे हिसाब से खूंखार जानवर रहते हैं. ऐसा निर्णय क्यों लिया ?"

"क्योंकि वहां न तानाशाह है, न माफिया लोग, न सुपारी लेकर हत्या करने वाले हत्यारे और न निष्ठुर अफसर."

वे सब स्तब्ध रह गये.

आशालक्ष्मी, नया शहर, बीकानेर -३३४ ००४ (राज.)

संस्कार

✍ विजय बजाज

उस दिन यूं ही टहलते-टहलते देखा कि पड़ोस के शर्मा जी का सात वर्षीय बेटा रिंकू हाथ में लिये बिस्कुट के पैकेट को कई हिस्सों में बांट रहा है. रिंकू चूंकि अपने मम्मी-पापा की इकलौती संतान है तो जिज्ञासा हुई कि वो ये हिस्से किसके लिए कर रहा है. उसके पास जाकर पूछा तो बहुत ही गंभीरता से बोला. -"अंकल आपको नहीं पता क्या, जो कुछ भी मिले उसे मिल बांट कर खाना चाहिए."

मुझे उसकी बात सुनकर बहुत खुशी हुई कि कितने अच्छे संस्कार दिये हैं उसके मम्मी-पापा ने. यूं ही बातचीत करने के उद्देश्य से मैंने उससे पूछ लिया कि उसे यह सब कौन सिखाता है - मम्मी या पापा. अपने काम में व्यस्त उसने मासूमियत से ज़वाब दिया - "अरे इसमें सिखाने की क्या बात है. पापा को जब भी कोई ठेकेदार लिफ़ाफ़ा दे जाता है, पापा तुरंत उसमें से रूपये निकालकर सबके हिस्से के अलग-अलग लिफ़ाफ़े बना देते हैं और कहते हैं कि मिल बांट कर खाने में ही सबका भला है."

बैंक ऑफ बड़ौदा, मकरोनिया, सागर - ४७०००४

दो नवगीत

✍ वेद हिमांशु

(१)

बहुत समझाया मैंने
अपनी प्यास को / किंतु
वह तो बच्चों जैसी
ज़िद्दी ठहरी / और
सुख की एक बूंद में,
दुख के सौ सौ
सागर पी डाले !
यूं तो सदा अनाथ रहा
भूख की उंगली पकड़ी
अभावों के साथ रहा
किंतु स्वाभिमान
बिकाऊ नहीं था / इसीलिए
मैंने धर्मपिता नहीं पाले !!

(२)

पगलाई धूप के बाद
जैसे बरसात !
स्पर्श भूले कंधों पर
हौले से / ओह !
ये आपका हाथ !
शब्दों को समझाये कौन ?
वे मौन !
अभिव्यक्ति मचलती है
हालत कहते नहीं बनती है
पर कितना कह जाते
ये अनकहे हालात !
मन के बंधन में
तन के चंदन में
किसकी शह, किसकी मात
मौन रात ! मौन प्रभात !!

पंचवटी विहार, विवेकानंद नगर,
शाजापुर-४६५ ००१ (म. प्र.)

ग़ज़ल

✍ सतीश गुप्ता

जाने मन जाने वफ़ा ऐ ज़िंदगी,
फिर नयी इक दे अदा ऐ ज़िंदगी ।
फूल शाखों से न झरने पायें अब,
पत्थरों को दे दुआ ऐ ज़िंदगी ।
अजनबी बन कर रहा मैं यार से,
हर कदम पर दे दगा ऐ ज़िंदगी ।
बाद मुद्दत जुर्म इक साबित हुआ,
और मुझको दे सज़ा ऐ ज़िंदगी ।
बेवफ़ा महबूब को तू माफ़ कर,
और थोड़ी दे वफ़ाऐ ज़िंदगी ।
तय करूं मैं मौत का मुमकिन सफ़र,
आज उसका दे पता ऐ ज़िंदगी ।

पंजाब नेशनल बैंक, महाराज गंज,
भदोही २२१ ३१४ (उ. प्र.)

दोहे

✍ वृंदावन राय 'सरल'

आंधी से अनुबंध कर, चुप हैं पीपल आम ।
पौधों को सहने पड़े, इस छल के परिणाम ।।
युग बगुलों की दृष्टि जब, ठहरी यश तालाब ।
चुन चुन मीनें खा गये, छलियों के अल्काब ।।
उस जंगल सी ज़िंदगी, कैसे करें, कुबूल ।
जिसमें बट पीपल नहीं, उगते सिर्फ बबूल ।।
पलकों पर ही रोकना, तुम अश्कों का पूर ।
दुनिया में इमदाद का, आज नहीं दस्तूर ।।
अटल मुसर्रफ वार्ता, तय थी होना फेल ।
क्योंकि अब तक नीम पर, चढ़ी नहीं गुरबेल ।।

पोद्दार कॉलोनी (राय भवन),
सागर ४७० ००२ (म. प्र.)

लघुकथा

नयी परिभाषा

✍ डॉ. योगेंद्रनाथ शुक्ल

'देखो भाई! मैं रिश्वत नहीं लेता, हां काम हो जाने के बाद जो आपकी मर्जी हो मुझे दे देना...' उस नये बाबू का यह कथन रविप्रकाशजी समझ नहीं पा रहे थे. उसकी पंक्तियां उनके दिमाग में अभी भी घूम रही थीं. रविप्रकाशजी दो माह से लोन पास कराने के लिए मुख्य दफ़्तर के चक्कर लगा रहे थे. वे भविष्य निधि से लोन निकलवाकर मकान बनवाना चाहते थे. सभी औपचारिकताएं पूर्ण हो गयी थीं पर बाबू उनकी फाइल दबाकर बैठ गया था. परेशान होकर आज उन्होंने बाबू से स्पष्ट पूछ लिया, कि वह लोन पास कराने के कितने रूपये लेगा ? इसके प्रत्युत्तर में बाबू ने जो कथन कहा... वह उनके लिए गुत्थी बना हुआ था.

शाम को जब उन्होंने पूरी बात अपने युवा पुत्र को बतायी तो पुत्र बोला, 'बाबूजी ! आप उस बाबू की बात नहीं समझ पाये...दरअसल काम होने के पूर्व दी गयी राशि को ही आज रिश्वत माना जाता है और काम हो पाने के बाद अपनी खुशी से दी गयी राशि रिश्वत नहीं मानी जाती, उसे बख़्शीश कहा जाता है.'

'...पर बेटा बख़्शीश तो स्वेच्छा से दी जाती है, मुंह से मांगी नहीं जाती !'

'बाबूजी ! नये ज़माने में परिभाषाएं बदल रही हैं, ये नये सरकारी-गणित हैं, इसकी शब्दावली आपकी समझ में नहीं आ सकती !'

पुत्र यह कह कर कक्ष के बाहर निकल गया था और रविप्रकाशजी नये ज़माने की इस शब्दावली में उलझ कर रह गये थे !

३९, सुदामा नगर, अन्नपूर्णा रोड, इंदौर ४५२ ००९

आमने / सामने

जमी हुई झील और पिघलता समय

रमेश कपूर

(बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठें खोलना चाहता है. लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने/सामने.' अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नीसिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, सुमन सरीन, फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा और पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डां. देवेंद्र सिंह और राकेश कुमार सिंह से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है रमेश कपूर की आत्मरचना.)

गर्मियां आरंभ हो चुकी हैं. और इसके साथ ही पहाड़ों पर जमी वर्फ़ का पिघलना भी. लेकिन भीतर जो वर्फ़ जमी हुई है उसका क्या ? वहां तो पूरी की पूरी एक झील ही है - एकदम सख़्त और ठंडी. छूने भर से सिहरन होती है. डर भी लगता है. वहां शरीर को जमा देने वाली पानीली ठंडी सतह के नीचे स्मृतियों का एक सैलाब भी तो है. ...और उस सैलाब में एक उफ़ान.

अपनी तमाम महान उपलब्धियों के बावजूद इन्सान के लिए यह संभव नहीं कि वह अपने गुज़रे हुए समय की घड़ी में लगी सुईयां वापस घुमा सके. किंतु हमारी स्मृतियां ऐसा कर सकती हैं. इससे इतना अंदाज़ा तो हो ही जाता है कि हम एक साथ अपने जीवन के तीनों कालखंडों में जीते हुए चलते हैं. कभी अतीत बार-बार लौट कर आता है तो कभी वर्तमान उंगली पकड़ लेता है. ...और कभी भविष्य का अचिन्हित-अनदेखा रहस्यमयी संसार हमारे सामने होता है.

आज जब वापिस लौट कर देखता हूं तो पाता हूं दिल्ली के तिलक नगर का एक मुहल्ला, जहां देश विभाजन के बाद शरणार्थियों को लाकर बसाया गया था. एक ही तरह के बने मकान. छतें सीमेंट की नालीदार चादरों से बनी. ...और लोगों के चेहरों पर भी एक ही जैसे भाव ...एक सी ही लकीरें. लेकिन तब बहुत कम मकान ऐसे रह गये थे. ...और बहुत कम लोग भी.

इसी मुहल्ले की एक गली. गली के बीचों-बीच उगा नीम का एक विशालकाय पेड़. उस पेड़ के नीचे बैठा एक पागल खूंखार कुत्ता, जिसने मुहल्ले के कई लोगों को काटा और पूरे मुहल्ले में दहशत फैला दी. ...हालांकि कहा जाता है पगलाया कुत्ता कभी भी एक ज़गह पर टिककर खड़ा नहीं रहता. ...उसी पगलाये कुत्ते के बिल्कुल पास है छोटा-सा एक बच्चा जो घुटनों के बल चलता हुआ उस कुत्ते के बिल्कुल पास तक चला आया और कभी वह उस कुत्ते के कान पकड़ कर खींचता है तो कभी उसकी पीठ पर चढ़ने की कोशिश करता है. पेड़ के बिल्कुल सामने वाले घर में खाना खाते बच्चे के माता-पिता जब यह दृश्य देखते हैं तो उनकी जान सूख जाती है. दौड़ते हुए वे बाहरी गेट तक आते हैं और डर कर वहीं रुक जाते हैं. न तो उनसे वहां खड़े रहना बन पड़ता और न ही वे भाग कर अपने बच्चे को उठाने की हिम्मत जुटा पाते हैं. इसी चिंता में वे एक-दूसरे का मुंह देखते रहने के सिवा कुछ नहीं कर पाते. असहय...और भयग्रस्त.

लेकिन वह बच्चा उनकी इस चिंता से बिल्कुल अनजान खेलता रहता है उस पागल कुत्ते के साथ. ...और कुत्ता है कि वह भी चुपचाप बैठा है उसकी इस धौंसभरी हरकतों को सहन करता हुआ. कभी-कभार वह अपने कान छुड़ाने की गरज़ से अपने सिर को झटकता है और फिर मस्त होकर इधर-उधर देखने लगता है. यह सिलसिला कुछ क्षणों तक चलता रहता है. तब तक, जब तक कि वह कुत्ता उस बच्चे की इन हरकतों से तंग आकर एक बार ज़ोर से भौंकता नहीं ...और बच्चा रोता हुआ वापिस अपने

घर की ओर नहीं मुड़ जाता - अपने घुटनों के बल ही रेंगता हुआ. कुत्ता भी वहां से उठ कर चल देता है और बच्चे के माता-पिता चैन की सांस लेते हैं.

अपने माता-पिता से सुनी यह घटना, जिसमें पागल कुत्ते के साथ खेलता मैं स्वयं ही हूं, जब आज याद आती है तो ऐसा महसूस होता है कि आज हम सब पागल कुत्तों की भीड़ में घिरे छोटे बालक की तरह नहीं ? परिस्थितियां इतनी कठोर हैं और जीने की शर्तें इतनी क्रूर कि जिसने पारस्परिक मानवीय संबंधों पर तो असर डाला ही है, समूचे मानवीय अस्तित्व को भी खतरे में डाल दिया है. ऐसे में भी यदि संवेदनाएं शेष रहती हैं ...संघर्ष का माद्दा जीवित बचा रहता है तो यह साहित्य और उससे उपजे विचारों के कारण ही है.

तो विचार साहित्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है...सबसे बड़ी देन. चाहे वह पुस्तक रूप में हमारे सामने हो अथवा दादी-नानी की कहानियों के रूप में या हमारे व्यवहार के रूप में. जीवन कहीं न कहीं ...किसी न किसी रूप में साहित्य से ही संतुलन प्राप्त करता है.

साहित्य और उससे उत्पन्न विचार से मेरा परिचय सर्वप्रथम पिताजी ने ही करवाया. सेन्ट्रल वेहिकल डिपो, दिल्ली में कार्यरत पिताजी अक्सर अपने कार्यालय से साहित्यिक पुस्तकें लेकर आते, जो अमूमन उर्दू में ही होतीं. अतः उन्हें पढ़ पाना तो कम से कम हमारे लिए संभव न था लेकिन पिताजी पुस्तकें पढ़ने के बाद अक्सर हमें उसका सार-रूप रात को सोने के पहले सुनाते. रूप-बसंत, चार राजकुमार भाइयों की कहानी, भगतसिंह-चंद्रशेखर आज़ाद के किस्सों के बीच साहित्य-सार भी हमें उपलब्ध होता रहता.

तब सोचा नहीं था कि कभी भविष्य में मैं भी लेखक बनूंगा. फैंटम, मैंड्रेक, फ्लैशगार्डन जैसे कॉमिक्स दीवानगी की हद तक पढ़ता था. इसके साथ-साथ गंभीर साहित्य की ओर भी रुचि बढ़ती गयी. ग्यारह वर्ष की आयु में अपने एक मित्र (जिसका नाम भी रमेश कपूर ही था और मेरी ही कक्षा में पढ़ता था) के साथ मिलकर अपने जीवन की पहली कहानी लिखी. सिर्फ लिखी ही. कहीं प्रकाशनार्थ नहीं भेजी. शायद संकोचवश ही. संकोच, जो वर्षों-वर्षों तक बना रहा. कहानियां कई लिखीं. कॉलेज पत्रिका में प्रकाशित भी होती रहीं. कहानियां भी और कविताएं भी. कॉलेज के समारोहों में भी भाग लेता रहा. पुरस्कार भी जीते. किंतु अंतर्महाविद्यालयी प्रतियोगिताओं में कभी कोई पुरस्कार नहीं जीत पाया. हां, इतना अवश्य हुआ कि रामधारी सिंह 'दिनकर', भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं ने साहित्य की समझ मेरे भीतर पैदा कर दी. मोहन राकेश, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, धर्मवीर भारती जैसे दिग्गज लेखकों को पढ़ने के पश्चात इस समझ में और इज़ाफा हुआ. मोहन राकेश का नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' हमारे कोर्स में भी था और टी. वी. पर भी धूम मचा चुका था. लेकिन पता नहीं क्यों, विचार की दृष्टि से मुझे यह उपन्यास न तब पसंद आया था, न अब पसंद है. हां, भाषा और कथानक पर अपनी पकड़ के कारण इसने हिंदी के लाखों पाठक तैयार किये.

इनके साथ-साथ कॉलेज में 'कल्पना' और 'आलोचना' जैसी पत्रिकाएं आती ही थीं. उन्हें भी पढ़ता. इसका फायदा मुझे यह हुआ कि थोड़ा बहुत लिखने का प्रयत्न भी करता रहा. यारों-दोस्तों से प्रशंसा भी मिलती रही. तब कहीं जाकर लगा कि हां, मैं भी लिख सकता हूं. लेखक बनने का संकल्प (नहीं, शायद लालसा) तब मेरे भीतर पैदा हुआ था, जब आठवीं कक्षा में था. पिताजी हिंदी का कोई उपन्यास लाये थे, जो डाकुओं के जीवन पर आधारित था. किसी राजेश कपूर का लिखा हुआ. पढ़ा तो वाकई अच्छा लगा. शायद इसलिए कि डाकुओं को लेकर हमारे मन में हज़ारों प्रश्न थे. उनकी रहस्यमयी-रोमांचक और संघर्षपूर्ण ज़िंदगी से पहली बार परिचय हुआ था. दूसरे, पिताजी ने बताया कि यह उपन्यास उनके एक सहकर्मी के बेटे ने लिखा है. तब पहली बार, हां, पहली बार सोचा कि मैं भी लेखक बनूंगा. तब वह उपन्यास मुझे एक चुनौती लगा था. ठीक-ठीक कहूं तो शायद लेखक बनने की इच्छा नहीं थी वह. इतना अवश्य था कि मैं भी एक उपन्यास लिखूं. जब पिताजी के सहकर्मी का बेटा लिख सकता है तो मैं क्यों नहीं ?

तब एक भ्रम यह भी टूटा कि 'लेखक' नाम का प्राणी कोई हाड़-मांस का बना एक साधारण व्यक्ति नहीं होता, किसी दूसरी दुनिया का जीव. ...लेकिन अंतर्महाविद्यालयी प्रतियोगिताओं में कोई भी पुरस्कार न जीत पाना हमारे लिए, वस्तुतः मेरे लिए एक निराशाजनक बात थी. हर प्रतियोगिता में गिने-चुने नाम ही पुरस्कार पाते थे. हमें लगा कि इन नामों के रहते मैं कभी भी ...कोई भी पुरस्कार नहीं जीत पाऊंगा. इस विचार से ही मुझे निराशा होती थी. किंतु उन्हीं दिनों सत्यवती कॉलेज में कविता-प्रतियोगिता में हमारे ही कॉलेज (पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज, दिल्ली) के हिंदी के एक प्रोफेसर (नाम याद नहीं) ने निर्णायक के अपने भाषण मे एक बात बहुत प्रेरणादायक कही कि जिन्होंने पुरस्कार जीते, उन्हें बधाई. ...और जो नहीं जीत पाये उन्हें निराश होने की आवश्यकता नहीं है. ऐसा अक्सर देखने में आता है कि कुछ लोग हमेशा ही इन प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत होते रहते हैं. लेकिन कॉलेज से निकलने के बाद उनका साहित्यजगत में कहीं कोई नाम नहीं होता बल्कि जो पुरस्कार नहीं जीत पाते, वे साहित्य-सृजन करते रहते हैं.

आज महसूस होता है कि उन्होंने कितनी बड़ी सच्चाई से अवगत कराया था. ...और उनकी इस बात से मुझे कितना संतोष, कितना उत्साह मिला था ! उस दिन सत्यवती कॉलेज से लौटते हुए मेरे भीतर की सारी निराशा ...सारी कुंठा समाप्त हो

गयी थी.

आज जब पुराने यार-दोस्त मिलते हैं तो खुशी प्रकट करते हैं और कहते हैं कि यार, रमेश ! हमें खुशी है कि तुमने अपने शौक को जीवित बनाये रखा.

मैं समझता हूं, इसका संबंध जितना व्यक्ति के शौक से है, उससे कहीं अधिक लेखन के प्रति उसकी प्रतिबद्धता से है.

इसी प्रतिबद्धता के चलते कई कहानियां लिख डालीं. लेकिन मेरे मित्रों में ऐसा कोई परिपक्व सोच और गहन अंतर्दृष्टि वाला कोई नहीं था,.जो बहुत सटीक समीक्षा कर सकता. क्योंकि वे साहित्य ज्यादा पढ़ते नहीं थे. मैं तो फिर भी काफी पढ़ लेता था. कॉलेज की लाईब्रेरी से तो पुस्तकें लेकर पढ़ता ही, अपनी जेब खर्च से हर दूसरे-तीसरे दिन पुरानी किताबों की एक दुकान से किताबें खरीद कर पढ़ता था, जो सस्ती भी पड़ती थीं और जहां से अच्छी किताबें भी मिल जाती थीं.

लेकिन बीच में तीन या चार वर्ष तक उस दुकान पर जाना नहीं हो सका. इसके पीछे भी एक रोचक वाक़या है, कहते हैं कि जिसे पढ़ने का शौक हो, वह कहीं से भी ...किसी भी तरह अपनी पसंदीदा पुस्तक हासिल कर ही लेता है. यह किस्सा शायद तब का है, जब मैं सातवीं कक्षा में पढ़ता था. मैं और मेरा एक मित्र (जिसने आगे चल कर मेरे जीवन में एक दुश्मन की भूमिका भी अदा की). हम मिलकर ही पुस्तकें खरीदने जाते थे. दुकानदार हमें पहचानता तो था ही. हमें देखते ही हमारी पसंदीदा पुस्तकें निकाल कर हमारे सामने प्रस्तुत करता. उसे पता होता था कि हमें कौन सी पुस्तक पसंद आयेगी. जेब खर्च उन दिनों अधिक मिलता नहीं था. यही कोई पांच पैसे रोज़ाना. वही जोड़-जोड़ कर हम अपना शौक पूरा करते.

एक दिन हमें एक बहुत अच्छी पुस्तक वहां मिल गयी. दाम पूछे तो हमारी हिम्मत ज़वाब दे गयी. दोनों की जेब में पड़े पैसे मिला कर भी पूरे न पड़ते थे. और वह बूढ़ा दुकानदार एक पाई भी कम करने को तैयार नहीं था. पुस्तक हम किसी भी कीमत पर छोड़ना नहीं चाहते थे. जब मोल-भाव देर तक चला तो उस दुकानदार ने पुस्तक हमसे लगभग छीनते हुए वापिस रख ली. हम मन मसोसकर रह गये.

तभी हमें एक तरक़ीब सूझी. दुबारा पुस्तक देखने के बहाने हमने पुस्तक उठाई और पन्ने पलटने लगे. जैसे ही दुकानदार का ध्यान दूसरे ग्राहकों की तरफ गया, मैंने पुस्तक के कुछ पन्ने बीचों-बीच से फाड़ दिये. और कुछ देर बाद पुस्तक उसे लौटाते हुए कहा - 'बाबाजी ! हमें नहीं खरीदनी यह पुस्तक. यह तो सारी फटी हुई है.'

उस बूढ़े दुकानदार ने पुस्तक को देखा. देख कर सोच में पड़ गया. फिर पुस्तक हमें देते हुए बोला - 'अच्छा, लो यह पुस्तक. जो देना हो दे दो.' हमने अठन्नी उसकी हथेली पर धरी और वहां से चलते बने. हमारी खुशी का कोई ठिकाना न था. खुश इसलिए भी थे कि एक ज़बरदस्त नुस्खा हमारे हाथ लग गया था, कम पैसों में पुस्तकें ख़रीदने का. अब हम आये दिन यह नुस्खा आजमाने लगे. सफल भी होते रहे.

लेकिन एक दिन जैसे ही मेरे मित्र ने पुस्तक के पन्ने फाड़े, उस दुकानदार ने पन्ने फटने की आवाज़ सुन ली और गालियां बकते हुए हमें पकड़ने को दौड़ा. हमने पुस्तक वहीं पटकी और वहां से रफूचक्कर हो गये. उसके बाद हमने उसको अपना चेहरा नहीं दिखाया. दिखाया तो तभी, जब कॉलेज में जाने लगे. तब तक तो काफी बदल चुका था. हमारे चेहरे भी और उस बूढ़े दुकानदार की स्मृति भी.

इस घटना को मैं अपना बचपना नहीं मानता. इसके पीछे किसी भी कीमत पर अच्छी पुस्तकें हासिल करने और उन्हे पढ़ने की प्रेरणा कार्य करती थी. कई बार पढ़ा भी कि बड़े-बड़े साहित्यकार भी दूसरों की पुस्तकें या तो मार लेते थे, या फिर चुरा लेते थे.

ग़रीब माता-पिता की ग़रीब संतान होने के कारण अपने-आपको कई सीमाओं में बांध कर रखना पड़ता था. फिर भी इतना संतोष तो था ही कि अपने माता-पिता की सात संतानों में से जीवित बचे पांच बच्चों में एक मैं ही था, जो साहित्य से लगाव रखता था और जिसने अभावों के बीच भी अपने शौक को मरने नहीं दिया.

हमारे अपने घर की परिस्थितियां ऐसी थीं कि पिताजी को महीने के पंद्रह दिनों के पश्चात् ही उधार पर निर्भर रहना पड़ता. मैं उन दिनों को, जब मैं युवा था और सारी बातें समझता था, अपने परिवार के बुरे दिन नहीं मानता. हां, संघर्ष के दिन अवश्य मानता हूं. अपने अस्तित्व के लिए जद्दोज़हद के वे दिन ऐसे कष्टकर थे कि उन्हें याद कर आज भी तक़लीफ होती है. अपने ऊंचे आदर्शों के लिए जाने गये पिताजी को भी एक दिन मज़बूर होकर हमारे पड़ोसी, जिन्हें हम 'अंकल' कहते थे, को यह दरख़्वास्त करनी पड़ी कि वह अपने राशनवाले से थोड़ा बहुत राशन उधार दिलवा दें.

इतना ही नहीं, मुझे स्वयं भी कक्षा में निरीक्षण के समय अनुपस्थित रहना पड़ा, क्योंकि मेरे पास बिना पैबंद लगी कोई कमीज़ नहीं थी. ऐसी शर्मनाक स्थितियों को मैं अपने अपरिपक्व दिमाग़ से अपने ही ढंग से विश्लेषित करने की कोशिश करता. ...उन्हें जानने-समझने का प्रयास करता.

मैंने पिताजी की परिस्थितियों को जितना भी जानने-समझने का दावा किया हो लेकिन मैं आज भी यह तय नहीं कर पाया कि मुझे किन हालातों ने मज़बूर किया था कि मैं पिताजी की जेब से चिल्लर चुराकर अपनी पसंद की चीज़ें खाने लगा. बिना यह सोचे-समझे कि उनकी जेब में कल के लिए कुछ बचेगा भी या

दो ग़ज़लें

✍ आनंद शर्मा

तरक्की की उड़ानों को मेरे परों में रख दे
इन दियों को अंधेरों के घरों में रख दे ।।
प्यार की उम्मीद करना तू उससे बाद में
पहले नफ़रतों को कठघरों में रख दे ।।
गुंजाइश निकालेंगी खुद आप कामयाबियां
कोशिशों को ताज़ा अवसरों में रख दे ।।
इन मसायल का हल कत्ल-ओ-गारत नहीं
समझौते की म्यान में खंजरों को रख दे ।।
पस्त हो जायेगी दहशत भरी हवा
बच्चों की हंसी याद के मंजरों में रख दे ।।
गिनती के लिए इतिहास से तकरार यूं न कर
अपने सर को शहीदों के सरों में रख दे ।।

ये कैसी हिमाकत करने की जिद करता है
ये आदमी मुस्कराने की जिद करता है ।।
इसको दरकार है खुली खिड़कियों की हवा
ये रौशनदान बंद करने की जिद करता है ।।
जालिम बन जायेगा दोस्तों रोको इसे
ये आंख के पानी को मारने की जिद करता है ।।
जिस पत्थर से तोड़ा है कल आइना इसने
ये आज उसे फूल बनाने की जिद करता है ।।
कि इससे पहले कोई न उछाल दे फिर उसे
ये सिक्का भट्टी में गलने की जिद करता है ।।

हकीम कन्हैयालाल मार्ग,
बिहारीपुर, बरेली २४३ ००३.

नहीं.

कहीं अवचेतन में वह भूख तो नहीं थी, जो वर्षों से हमारे भीतर दबी हुई थी ? ...भूख, जो दूसरों को खाते देखकर और भी तेज हो जाती है. कहीं वह 'कॉम्पलैक्स' तो नहीं था, जो अभावों के कारण कभी-कभी भीतर कुलबुलाता रहता था ? ...या कि मैं भी जाने-अनजाने अपने बड़े भाई की बुरी आदतों का अनुसरण करने लगा था ?

तो क्या इन्सान हमेशा ही हालात से हारता रहता है ? तब मैं भी यही सोचता था. मैं हर रोज़ अपने आपसे इस आदत से छुटकारा पा लेने का वायदा करता रहा. ...और हर रोज़ अपना वायदा निभाने में असफल रहा.

और अंततः मैं अपने प्रयत्नों में सफल रहा. शुक्र है कि मुझे इस सिलसिले को दूर तक नहीं झेलना पड़ा. पश्चाताप और यह एहसास कि मैं अपने आप से ही विश्वासघात कर रहा हूं ...इन सबने मिल कर मुझे इस शर्मिंदगी से छुटकारा दिलाने में सहायता प्रदान की.

बर्फ़ की ठंडी सतह से जब सारी स्मृतियां पिघल-पिघल कर बहने लगती हैं और यथार्थ की ठोस ...तपती हुई सतह को छूती हैं तो मुझे आज भी अफ़सोस होता है कि पिताजी के साथ मैं कैसा विश्वासघात करता रहा. जितना विश्वास उन्हें मुझ पर था, शायद किसी पर नहीं रहा. शायद इसी से मैं अपने प्रयत्नों में सफल हो सका था.

कहावत है कि वक़्त की आग में हर चीज़ झुलस जाती है. ऐसे में इन्सानी रिश्तों के जिस्म पर भी झुलसने के निशान पड़ गये हों तो यह स्वाभाविक ही था. बड़ा भाई अपनी मक्कारियों और फ़रेब से पिताजी का ...बल्कि पूरे परिवार का विश्वास खो चुका था. उसकी पढ़ाई बीच में ही छूट चुकी थी. नाकारा-आवारा दोस्तों के कारण वह भी उन जैसा ही हो गया. फलस्वरूप उसमें और पिताजी के बीच के संबंध बर्फ़ की तरह ठंडे हो गये. और ये संबंध पिताजी के जीवन के आखिरी क्षणों तक सामान्य नहीं हो सके.

पिताजी की मृत्यु के दो वर्ष पूर्व ही भाई को भारत इलेक्ट्रिक लिमिटेड में नौकरी मिल चुकी थी. पिताजी सोचते थे कि शायद अब उसमें कुछ सुधार आ सकेगा. लेकिन यह सिर्फ़ एक संभावना थी, जो आगे चल कर निराधार सिद्ध हुई. ट्रेनिंग के लिए भाई बैंगलोर चला गया. वहां से आये दिन पैसों की मांग आने लगी. कभी जेब कट गयी तो कभी कोई क़िताब लेने के बहाने. ऐसा नहीं कि पिताजी समझते नहीं थे. लेकिन उनके मन में यही रहता कि धनाभाव के कारण बेटे को इतनी दूर बैठे कोई परेशानी न हो.

किंतु परेशानियां थीं कि उनका पीछा नहीं छोड़ रही थीं. तब तो वह बहुत परेशान रहने लगे, जब ट्रेनिंग पूरी होने के

बावजूद भी भाई घर वापिस नहीं लौटा. पत्रों का कोई ज़वाब भी नहीं मिलता था. यह तो बाद में पता चला कि वह किसी मद्रासी लड़की के प्यार में इस कदर डूब चुका है कि उसे अपने घर, अपने माता-पिता किसी का भी कुछ ख़्याल नहीं रहा. बस, इसी बात ने उन्हें इतना गहरा आघात दिया कि वह दुबारा संभाल ही नहीं सके. आधी-आधी रात को उठ कर हमसे पूछते - 'सुरेश आया ? ...या कोई ख़बर ?'

...और फिर हमारे चेहरों को देख कर निराश हो उठते. कार्यालय से वापिसी पर हर रोज़ बिना नागा डाकघर से पता करते- 'हमारी कोई चिट्ठी आयी ?'

दिन रात पिताजी के दिमाग़ में एक ही प्रश्न घूमता रहता. 'वह आया ?' धीरे-धीरे हमने महसूस किया कि उनके स्वभाव में... उनके व्यवहार में एक अजनबीपन आ रहा है, एक उदासीनता. एक खोयापन. बातें करते-करते अचानक चुप हो जाते. चुप बैठे-बैठे अचानक बड़बड़ाने लगते. छोटी-छोटी बात पर उबल पड़ते और बड़ी से बड़ी बात पर भी शांत बने रहते. ऐसे, जैसे कुछ हुआ ही नहीं. उनकी इस हालत से हम सब भी परेशान रहने लगे.

एक रात अचानक ही हमने किसी भारी वस्तु के फ़र्श पर गिरने की आवाज़ सुनी. आवाज़ ऐसी थी कि हम सब घबरा गये. बत्ती जल कर देखा तो पिताजी चारपाई से फ़र्श पर गिरे पड़े थे. मां का चेहरा एकदम स्याह पड़ गया. क्योंकि पिताजी के मुंह में टेढ़ापन आ गया था. उनके कपड़े तार-तार थे. वे अभी भी अपने कपड़े अपने शरीर से उतारने की कोशिश कर रहे थे. हमारी समझ में नहीं आ रहा था कि उन्हें हुआ क्या है. मां खुद भी समझ नहीं पा रही थीं कि आख़िर किया क्या जाये. हम सबने उन्हें संभालने की बहुत कोशिश की लेकिन सफल नहीं हो सके. दो-तीन घंटे इसी तरह गुज़र गये. हो सकता है शायद वही समय बहुत संवेदनशील व महत्वपूर्ण रहा हो. यह तब हमारी समझ में नहीं आया. बहुत तड़के, दिसंबर मास में तब अंधेरा ही था, मैं मौसाजी को बुलाने चला गया, जो घर से करीब दस किलोमीटर की दूरी पर रहते थे. उनके आते ही हम पिताजी को विलिंगडन अस्पताल ले गये. लेकिन तब तक उनकी नाक से, मुंह से खून निकलने लगा था. खून देखते ही सब रोने लगे. मौसाजी ने अपनी आशंका जाहिर की कि शायद इन्हें 'ब्रेन हैमरेज' हो गया है ...और यह सच भी था. उनके बचने की कोई संभावना नहीं थी. न ही वह बच पाये. डॉक्टरों की तमाम कोशिशों के बावजूद भी नहीं. उन दिनों विलिंगडन अस्पताल की व्यवस्था का यह हाल था कि पिताजी को ग्लूकोज चढ़ाने के लिए नली भी वहां उपलब्ध नहीं थी. इसमें भी काफी समय बरबाद हुआ. समय के इन बरबाद हुए टुकड़ों से हम ...हमारा परिवार ऐसा बरबाद हुआ कि फिर उसे समेटना मुश्किल हो गया.

भाई की तब तक भी कोई ख़बर नहीं थी. अंतिम क्षणों तक हम उसका इंतज़ार करते रहे. अंततः सारे संस्कार मुझे ही संपन्न करने पड़े. मेरी उम्र के बालक के लिए यह बहुत बड़ा आघात था. मेरे लिए तो यह व्यक्तिगत आघात भी था. क्योंकि मैं उनका सबसे लाड़ला था.

इन्सान के भीतर के आवेग आख़िर इतने तीव्र कैसे हो उठते हैं कि वह प्यार के आवेग में अपना घर-बार भी भूल जाता है ? ...और संतान के प्रेम में मां-बाप इतने संवेदनशील कैसे हो उठते हैं कि उनके लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन जाता है ?

मैं अक्सर सोचता. ...सोच कर उदास हो जाता. बार-बार मन वापिस उन्हीं लम्हों की ओर लौटता, जिन्हें मैं याद नहीं करना चाहता था. ऐसा क्यों होता है ? हम जो नहीं चाहते, वही होता है ...और जो चाहते हैं, वह नहीं होता. कभी-कभी तो लगता है कि यह सब हमारे साथ ही क्यों होता है ? होता है तो हमारे होने का एहसास हमें क्यों नहीं रहता ?

शायद यही जीवन है. होने और न होने की तमाम दुविधाओं से अलग होकर अपनी ही गति से ...अपनी ही राह पर चलता हुआ. यदि ऐसा न होता तो आज मैं शायद एक पत्रकार होता. बहुत इच्छा थी पत्रकार बनने की. एक ख़्वाब लेकिन मां ने स्पष्ट मना कर दिया. 'पत्रकारों' के दोस्तों से ज़्यादा दुश्मन होते हैं. मां अक्सर यही कह कर मुझे मना कर देती.

मैं पेंटिंग अच्छी कर लेता था. लोगों ने सलाह दी कि मैं प्रोफेशनल आर्टिस्ट बन जाऊं. इसके लिए भी मां ने मना कर दिया. इस बार तर्क था कि यह भी कोई ढंग का काम है ?

हमारे यहां यानि हमारे देश में यही तो समस्या है. यहां युवा वर्ग का अपना कोई विचार नहीं होता. अपना कोई निर्णय नहीं. जो माता-पिता तय करते हैं, बच्चों को वही होना होता है. स्कूल-कॉलेज में भी जो विषय माता-पिता बच्चे के लिए उचित समझते हैं, ले लेते हैं. बच्चों की रुचि का कोई महत्व नहीं.

मां ने बहुत चाहा कि मैं किसी तरह टाइपिंग सीख कर कहीं 'वाइट कॉलर बाबू' बन जाऊं. एक स्टीरियो टाइप बाबू. लेकिन मैंने न टाइपिंग सीखनी थी, न ही सीखी.

मैंने बहुत चाहा कि किसी भी तरह पत्रकार बन जाऊं. लेकिन न किसी ने मुझे बनने देना था, न ही बनने दिया.

मैं यह नहीं कहता कि उस वक़्त मां का निर्णय ग़लत था. तब मां के सामने आर्थिक समस्या थी. शुक्र है कि पिताजी के जीवन काल में ही मां की सरकारी नौकरी लग चुकी थी. इसी कारण हम अपनी पढ़ाई जारी रख सके. अपने परिवार में मैं अकेला ही था, जो कॉलेज में प्रवेश कर सका.

बड़े भाई की ओर से तब भी मां को किसी प्रकार की आर्थिक सहायता नहीं मिलती थीं. वह साहिबाबाद जाता था नौकरी के लिए. जितने पैसे मां की हथेली पर रखता, उससे कहीं

ज्यादा वापिस मांग लेता. उसकी आदतों में कभी कोई बदलाव नहीं आ सका. उसकी शादी के बाद भी नहीं. तीन बहनें थीं. तीनों ब्याही जा चुकी थीं. इसके बावजूद घर की जिम्मेदारियों से उसका कोई वास्ता नहीं था.

भाई की शादी के बाद घर का माहौल बहुत तनावपूर्ण रहने लगा था. भाभी बहुत मुंहफट थी. मां का स्वभाव भी बहुत तीखा था नतीज़ा यह हुआ कि आये दिन घर में झगड़े होने लगे. रोज़-रोज़ की इस कलह के बीच ही मैंने कॉलेज की अपनी पढ़ाई पूरी की. नौकरी भी लग गयी. लेकिन बहनों के कारण मेरे और मां के बीच संबंधों में अवांछित तनाव रहने लगा.

भाई को कंपनी की ओर से मकान मिल गया था. वह वहीं जाकर रहने लगा - ग़ाज़ियाबाद. अब मां के पास सिर्फ़ मैं ही रहता था. जिस तरह परिस्थितियां करवट बदल रही थीं ...और जो शक्ल ले रही थीं, उससे इतना तो स्पष्ट हो ही गया था कि शादी के बाद वहां रह पाना शायद बहुत दिनों तक मेरे लिए संभव न हो.

और हुआ भी ऐसा ही. दरअसल मेरा विवाह एक प्रेम-विवाह था. अरैंज्ड मैरिज में मेरा अपना भी विश्वास नहीं था. यह तो बंद मुट्ठी की तरह था. एक जुआ. दांव सही पड़ा तो पौ-बारह वरना तन के कपड़े भी उतर गये समझो.

हालांकि मां की ओर से भी और अन्य रिश्तेदारों की ओर से भी भरपूर कोशिश थी कि किसी तरह हम दोनों के बीच दुराव पैदा हो सकें. लेकिन ऐसा हो नहीं सका. धीरे-धीरे ये कोशिशें एक शीत-युद्ध में बदल गयीं. तब भी हम पर कोई असर नहीं हुआ. शायद यह सही मायनों में एक प्रेम-विवाह था. और हमारे अपने निश्चय बहुत ठोस धरातल पर टिके थे.

इस सारी जद्दोज़हद के बीच मेरा पढ़ना-लिखना एक तरह से स्थगित हो चुका था. पढ़ना तो फिर भी कभी-कभार हो जाता था. लिखना एकदम बंद. यह काफी तक़लीफदेय था.

आज सोचता हूं तो लगता है कि यदि मैं एक दिन राजेंद्र यादव जी से न मिला होता, तो आज जो लेखक-समीक्षक के रूप में मेरी पहचान बनी है, यह न बनी होती. उनसे मिलना भी अचानक ही हुआ था. 'हंस' की एक प्रति कहीं से ख़रीदी. इच्छा हुई कि क्यों न राजेंद्र यादव जी से मिला जाये. एक डर भी था कि इतने बड़े लेखक हैं. पता नहीं, मिलना पसंद करें या नहीं. ख़ैर, अक्षर प्रकाशन के कार्यालय पर फोन किया. वीना जी से बात हुई. उन्होंने राजेंद्र जी से बात करवा दी. ...फोन पर तो तय हुआ कि किसी दिन समय निकाल कर उनसे मिलूंगा.

लेकिन अगले ही दिन मैं 'हंस' के कार्यालय जा पहुंचा. जिस लेखक को हम वर्षों से पढ़ते-सराहते रहे, उसी से मिलना किसी सपने के सच होने जैसा था. पहली मुलाकात बहुत औपचारिक थी. कहां रहते हैं ? क्या करते हैं ? क्या पढ़ते हैं ? प्रिय लेखक कौन हैं ? लिखते भी हैं ? कुछ लिख कर हमें दिखाओ. पसंद आया तो छापेंगे.

बहुत उत्साहित होकर घर लौटा. लौटते ही लिखने बैठ गया. वह कहानी, जो वर्षों पहले लिखी थी और एक लेखक मित्र के पास रख छोड़ी थी पढ़कर राय देने के लिए. ...और आज तक कहानी वापिस नहीं मिल पायी. ख़ैर... कहानी का खाक़ा मेरे दिमाग में था. सप्ताह भर में कहानी लिख डाली. फिर पढ़ी. लगा कि संशोधन मांगती है, संशोधित किया. फिर ...फिर उसे संशोधित करता रहा और तब कहीं जाकर कहानी राजेंद्र जी के पास पहुंचायी.

अब उत्सुकता थी निर्णय जानने की. कुछ दिनों बाद फोन किया. फिर वीना जी से बात हुई. पता लगा कि कहानी अर्चना वर्मा जी ले गयी हैं. कुछ दिनों बाद फिर फोन किया. अब की मालूम हुआ कि कहानी उन्हें बहुत पसंद आयी है और स्वीकृत हो चुकी है. राजेंद्र जी ने भी कहानी पढ़ कर स्वीकृत कर दी. मैं तो डर रहा था कि इतने बड़े साहित्यकार-संपादक के पास कहानी भेज रहा हूं. कहीं उन्होंने नकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त कर दी तो ?

उन्होंने तो नहीं, हां मेरे एक लेखक मित्र ने कहानी पढ़ कर यह टिप्पणी की कि यह मेरी वैचारिक विपन्नता का चरम है. उन्हें हमेशा यही शिकायत रहती है कि अक्सर वर्जित विषय मेरी कहानियों का विषय क्यों बनते हैं ?

हां, यह एक विचारणीय प्रश्न है. तब तो और भी अधिक, जब कि हमारे व्यवहार ...क्रियाओं का प्रत्येक पहलू इस विषय के इर्द-गिर्द ही मंडराता हो. विषय तो कोई भी वर्जित या त्याज्य नहीं है. रमेश उपाध्याय जैसे संपादक भी अक्सर इस विषय से बिदकते हैं. उनका आरोप तो यह भी है कि 'हंस' ने पूरे साहित्यिक परिवेश का बेड़ा गर्क कर रखा है.

यदि हम इन विषयों पर बात ही नहीं कर सकते तो मैं समझता हूं हम लेखकों को अपने क़लम छोड़-छाड़ कर अपने हाथों में झाड़ू ले लेनी चाहिए. आख़िर जब हमारे अपने मुहल्लों में... हमारी अपनी गली के नुक्कड़ पर यही सब हो रहा हो, और वर्जित-त्याज की दुहाई देने वाले ये तथाकथित सफ़ाई पसंद लोग पवित्र मानवीय संबंधों को गली-सड़ी लाश में तब्दील होते देखते रहे हैं और नाक पर रूमाल रख कर किसी संकरी गली में चुपचाप छिपने की कोशिश करते हैं तो तब इसे सामाजिक-वैचारिक विपन्नता का चरम कहने की हिम्मत इन लोगों में क्यों नहीं होती ?

जब कोई ससुर अपनी विधवा बहू का बलात्कार करे या पिता अपनी पुत्री के साथ संबंध बनाने की अमानवीय कोशिश करे तब उनका आक्रोश इतना पंगु क्यों हो जाता है ?

हमें यदि अपने जिस्म पर बने गहरे ज़ख़्म का इलाज़

दो ग़ज़लें

अपना-अपना जी लिया, अपना-अपना काल।
मेरे हिस्से का समय, बना हुआ है न्याल ।।
सीने की देखी कहां, उसने मेरी आग।
आंखों में सागर दिखा, पके सेब से गाल ।।
मांस बना सब बिक गये, प्रेम प्रीति की लाज।
अब तो सब संबंध हैं, कटे मेष की ख्वाल ।।
भारत कल था मिल गया, मेरे घर के पास।
घंटों भर रोता रहा, पूछा जैसे हाल ।।
नाविक को चप्पू नहीं, सौ यात्री एक नाव।
लहरें हैं उन्माद में, खुला हुआ है पाल ।।
खायेंगे मिल बैठ वे, होगा ऐसा राज़।
चोर-चोर सब मिल गये, खूब गलेगी दाल ।।
आभा जीना है अगर, मानो मेरी बात।
प्यादा से फरजी बनो, टेढ़ी कर लो चाल ।।

आभा पूर्वे

किसका कैसा देश यह, यहां पराये लोग।
अपना-अपना मान सब, यहां रहे हैं योग ।।
बीत रहा जो समय है, लगता जैसे बोझ
सब तो भोगे मौज हैं, मैं भोगूं बस रोग ।।
मन का दुःख मन में रहा, उसे सकी न बांट।
जब भी कहना चाहती, मिला नहीं संयोग ।।
कैसा मेरा समय यह, कांटा सा है प्रेम।
दुनिया भर का दे गया, दुःख तेरा सहयोग ।।
आभा से होगा नहीं, रोके रखना सांस।
कह दूंगी सब सांच को, प्रेम नहीं हठयोग ।।

संपादिका, नया हस्तक्षेप, शरतचंद्र पथ,
मशाकचक, भागलपुर ८१२ ००१

करना है तो हमें उस ज़ख्म को...उससे टपकते लहू को दवाइयों के ज़रिए साफ़ करना ही होगा. इसके लिए बेशक़ हमें कितना भी दर्द क्यों न सहना पड़े.

लगभग इक्कीस वर्षों के वैचारिक मंथन के बाद जब यही संबंध मेरी कहानी में 'आख़िरी दस्तक' बन कर प्रकट होता है तो उस दस्तक की आवाज़ सिर्फ़ देह के दरवाज़ों तक ही सीमित नहीं होती अपितु पाठकों के विचार-पटल पर दस्तक देती है, जिनसे आमना-सामना करना ही हमारा ध्येय है. हम अगर इतना भी नहीं कर पाते तो हम समस्त पाठकों...समूचे समाज के साथ-साथ अपने आपको भी धोखा देने की कोशिश करते हैं.

ऐसा नहीं है कि अपनी कहानियों की आलोचना मुझे सहन नहीं होती. असहमति वैचारिकता को जन्म देती है इसलिए आलोचना मैं सहज रूप से स्वीकारता हूं. लेकिन जब आलोचना व्यक्तिगत आक्षेप बन जाये या उसमें छद्म स्वार्थ निहित हों तो अवश्य ही अच्छा नहीं लगता.

रूपसिंह चंदेल और डॉ. तेज सिंह से अक्सर मिलना-जुलना होता है. वे भी कहानियों पर तीखी टिप्पणियां करते हैं. लेकिन उन टिप्पणियों में इतना संतुलन होता है कि जो किसी भी लेखक के लिए दिशा-निर्देश का काम कर सकता है. लेकिन ऐसा कितने लेखक कर पाते हैं ?

इधर हिंदी साहित्य में जो एक-दूसरे की टांग खींचने का प्रचलन बढ़ रहा है, वह भी साहित्य के लिए बहुत घातक है. उपेंद्र कुमार अपनी नामराशि उदय प्रकाश को निशाना बना कर कहानी लिख रहा है तो उदय प्रकाश विभूति नारायण पर आरोप लगा रहा है.

आख़िर इस सबके पीछे रचनात्मकता कहां है ? ये तमाम चर्चाएं किसका हित करना चाहती हैं ? कैसे समाज की स्थापना का लक्ष्य है ? किन जीवन-मूल्यों की रक्षा करने का संकल्प दोहरा रहे हैं हम ? इसी चीज़ जो जानना...उसे पाठकों के सामने लाना ही तो साहित्य का मक़सद है. बात चाहे दलित साहित्य की हो अथवा स्त्री-विमर्शों की, हमें सच और झूठ के बीच के महीन फ़र्क को समझने के लिए अपनी वैचारिक दृष्टि को विस्तार तो देना ही पड़ेगा. अपनी संकुचित मानसिकता से छुटकारा पाकर खुलेपन को स्वीकारना ही होगा.

मैं स्वयं को इस दृष्टि से ख़ुशनसीब मानता हूं कि मेरे मित्रों ने, चाहे वह रूपसिंह चंदेल हों, डॉ. तेजसिंह हों अथवा अन्य मित्र, सबने मुझे साहित्यिक जगत की अच्छाइयां-बुराइयां समझने में भरपूर मदद की है. यही कारण है कि मैंने ग़ज़लें लिखनी बंद कर दी हैं और समीक्षाओं का काम भी बहुत कम कर दिया है. क्योंकि इससे मेरी अपनी रचनात्मकता बाधित होने लगी थी. समीक्षा का काम हालांकि हमारी दृष्टि को मांजने का काम तो करता ही है लेकिन उसके अपने आग्रह भी तो हैं. इसी से विचार

बनाया कि केवल बहुत आवश्यक और गिनी-चुनी समीक्षाएं ही लिखी जायें.

यूं जितना अचानक 'लेखक जैसे गुणों वाला आदमी' से 'लेखक' बन जाना था, उतना ही अचानक समीक्षक बन जाना भी था. वर्ष १९९८ की हंस की वार्षिक गोष्ठी में डॉ. गोपाल राय से मिलने का सुअवसर मिला तो उनके निमंत्रण पर उनके निवास पर जाना भी हुआ. उस लंबी बातचीत के दौरान उन्होंने एक कहानी संग्रह पकड़ाते हुए ठीक राजेंद्र जी वाली बात दुहराई कि 'इस पर समीक्षा लिख कर हमें दीजिए. प्रकाशन योग्य होगी तो हम प्रकाशित करेंगे.'

मज़ेदार बात यह भी कि उस पुस्तक का विमोचन जब राजेंद्र यादव जी के हाथों राजेंद्र भवन में हुआ तो मैं स्वयं भी वहां उपस्थित था.

'समीक्षा' त्रैमासिक का कार्यालय भी उन दिनों पटना से दिल्ली स्थानांतरित हो चुका था. तब लगा कि जो व्यक्ति अकेले दम बिना विज्ञापनों के तीन दशक से समीक्षा आधारित पत्रिका निकाल रहा है, कम से कम हमें उसे तो अपना लेखकीय सहयोग देना ही चाहिए. यही सोच कर 'समीक्षा' पत्रिका से जुड़ना हुआ. न सिर्फ़ इससे जुड़ा बल्कि उसके प्रचार-प्रसार की भी पर्याप्त चिंता रही. मेरे व्यक्तिगत आग्रह पर ही डॉ. गोपाल राय दिल्ली के साहित्यिक पत्रिकाओं के एक बिक्री केंद्र पर 'समीक्षा' रखवाने को सहमत हुए.

यही चिंता 'हंस' को लेकर भी थी. उसके प्रचार-प्रसार के लिए राजेंद्र जी से विचार-विमर्थ तो हुआ ही, लेकिन अर्चना वर्मा जी से इस बात को लेकर लंबी बातचीत भी हुई कि राजेंद्र जी के बाद 'हंस' को कौन संभालेगा ? उन दिनों राजेंद्र जी भी गंभीर रूप से बीमार होकर 'एम्स' की सैर कर चुके थे. तो यह प्रश्न सबके दिलों में उठना स्वाभाविक भी था. इस प्रश्न का कोई उत्तर किसी के पास नहीं था. हमारी चिंता अपनी ज़गह बरकरार थी.

...अब 'समीक्षा' के लगभग प्रत्येक अंक में मेरी समीक्षा प्रकाशित होने लगी. इसके बावजूद दिल में यह धारणा अपने प्रति काफी पुख्ता थी कि यह मेरा क्षेत्र नहीं. यह धारणा तब तक कायम रही जब तक कि मैंने 'साक्षात्कार' के एक पुराने अंक (अंक संख्या ४०-४१, मार्च-अप्रैल १९८३) में रांघेय राघव की कहानियों पर राजेंद्र यादव की समीक्षा 'परकोटे से बाहर के लोग' नहीं पढ़ ली. इस समीक्षा ने समीक्षा के संबंध में मुझे एक नयी दृष्टि प्रदान की, जो मेरे लिए दिशा सूचक सिद्ध हुई. इसका ज़िक्र मैंने अपने कई मित्रों से भी किया है. यह समीक्षात्मक लेख मैंने दसियों बार पढ़ा और उस पर गंभीरता से मनन किया. इस बदली हुई दृष्टि का ही यह प्रभाव था कि मैं डॉ. तेज सिंह की पुस्तक 'आज का दलित साहित्य' की सारगर्भित व सटीक समीक्षा करने में सफल हुआ, जो 'कथाक्रम' के अक्तूबर-दिसंबर २००१ के अंक में प्रकाशित हुई और जिसे मित्रों ने पूरे दिल से सराहा. सबसे महत्वपूर्ण टिप्पणी तो स्वयं डॉ. तेज सिंह की थी कि 'अपनी पुस्तक पर इतनी अच्छी समीक्षा उन्होंने कहीं अन्यत्र नहीं पढ़ी.' यह मेरे लिए बहुत उत्साहित करने वाली टिप्पणी थी, जिसने मेरी अपनी धारणा को भी बदल दिया. इस अकेली समीक्षा को लिखने के लिए मुझे कम से कम पंद्रह-बीस पत्रिकाएं व पुस्तकें पढ़नी पड़ी जो बहुत श्रमसाध्य कार्य तो था ही, साथ ही बहुत समय की मांग भी करता था. वर्ष २००१ लगभग पूरा ही इन समीक्षाओं के सुपुर्द करना पड़ा. ...और अपनी रचनात्मकता के नाम पर 'बाबूजी ठन-ठन गोपाल.' ले-देकर मात्र एक कहानी क्योंकि न तो मेरे पास पर्याप्त समय बच पाता था, न ही ऊर्जा. इसलिए रूपसिंह चंदेल की सलाह ने मुझे पर्याप्त रास्ता दिखाया कि मैं अपनी रचनात्मकता पर भी ध्यान दूं. सो, समीक्षाओं का काम कम करना पड़ा. यह महज़ संयोग ही था कि इन्हीं दिनों मैंने 'समीक्षा' पत्रिका से भी अलग होने का निर्णय ले लिया. इसके पीछे डॉ. गोपाल राय के दोहरे संपादकीय मानदंड भी थे और लेखकों-समीक्षकों के प्रति उनका उपेक्षापूर्ण रवैया भी. संपादकों द्वारा दुराव-छिपाव की इन्हीं नीतियों के कारण हिंदी के नये लेखकों को क्या कुछ झेलना पड़ रहा है, यह शायद वे नहीं जानते. 'कथन' के संपादक यदि विषयों के प्रति दुराग्रहों से ग्रस्त (...और त्रस्त) हैं तो 'कथादेश' के संपादक किसी नये लेखक की रचना को इस योग्य भी नहीं मानते कि आठ-आठ महिनों के पश्चात् भी उसके लेखक को कम से कम संपादकीय निर्णय की जानकारी देने का कष्ट भी करें. रचना लौटाने की बात तो बहुत दूर की है. यही हाल 'शेष' और 'समकालीन सेतु' का भी है. कदाचित् नये लेखकों के साथ यह दुराग्रह अधिक है.

इस दृष्टि से 'हंस', 'पहल', 'कथाबिंब', 'कथाक्रम', 'संबोधन', 'अकार', 'अक्षरपर्व' व कई अन्य पत्रिकाओं में अधिक पारदर्शिता देखने को मिलती है. इन दिनों परिमाणात्मक दृष्टि से जितने नये लेखक व पत्रिकाएं मौजूद हैं, गुणात्मक दृष्टि से भी उनका कार्य सराहनीय है. अपने समय के यथार्थ को जिस पैनी दृष्टि से नये लेखकों की पीढ़ी ने पकड़ा है और जिस कलात्मक दृष्टि से उसे व्यक्त किया है वह हिंदी साहित्य के उज्ज्वल भविष्य की ओर ही इंगित करता है ...और यह भी तब है, जब कि वैश्वीकरण और बाज़ारवाद की मार के बाद देश का सामाजिक ढांचा व साहित्यिक वातावरण एकदम प्रतिकूल है. यही साहित्य के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है ...और शायद सबसे बड़ा साहित्यिक सरोकार भी. ऐसे में किसी मुहल्ले की किसी गली में नीम के पेड़ के नीचे पागल कुत्ते के साथ खेलते बच्चे की चिंता उसके माता-पिता नहीं करेंगे तो कौन करेगा ?

ए-४/१४, सेक्टर-१८,
रोहिणी, दिल्ली ११० ०८५.

खुला मंच

सच है, हर सीपी से मोती नहीं मिलता, लेकिन सागर भी इतना उथला !

✍ आलोक भट्टाचार्य

'कथाबिंब' के अप्रैल-सितंबर ०२ अंक के 'सागर-सीपी' स्तंभ के अंतर्गत प्रा. (कृपया नोट करें, 'डॉ.' नहीं) नंदलाल पाठक के विचार पढ़े. उनके बारे में टिप्पणी करने से पहले, प्रिय संपादक जी, मैं पूरी विनम्रतापूर्वक आप से यह आग्रह करना चाहूंगा कि छापने से पहले आप सामग्री को ठीक तरीके से जांच-परख तो लें, ताकि पत्रिका में छपी सामग्री को पढ़ लोग पत्रिका को (यानी संपादक को) विचारहीन और हास्यास्पद तो न मानें. 'कथाबिंब' का एक स्तर है, इस अंक में छपे 'सागर-सीपी' ने उसे गिराया है. पाठक जी जो हैं, वह तो हैं ही, आप से ऐसी आशा न थी.

पाठकजी का कहना है- 'जितने आंदोलन आये, उनमें से एक भी परिपक्व आंदोलन नहीं था, सबका गर्भपात ही हुआ.' इस वक्तव्य पर स्नातक स्तर के हिंदी साहित्य के छात्र भी पाठक जी की बुद्धि पर हंसेंगे. नयी कविता, नयी कहानी आंदोलन और साहित्य पर इनके युगांतरकारी रचनात्मक प्रभाव को 'परिपक्व नहीं था' कहना कितना अपरिपक्व कथन है, इसे ज़रा आप ही सोचें. पाठकजी खुद अपनी ग़ज़लों में सामाजिक विडंबनाओं पर जो सीधे और तीखे प्रत्यक्ष प्रहार करते हैं, वे इन्हीं आंदोलनों की कृपा से, वरना तो पद्य (कविता-गीत-ग़ज़ल) छायावाद के रहस्यमय अप्रत्यक्ष आवरणों में ही अब तक ढका रहता. पाठकजी वाम-विरोधी हैं, लेकिन वाम-विरोधी अज्ञेयजी के प्रयोगवाद को भी वह परिपक्व नहीं मानते, इसका आश्चर्य भी पाठकजी के उन छात्रों को होगा, जो उनसे हिंदी पढ़ते रहे हैं. क्या पाठकजी पहले और दूसरे 'तार सप्तक' का महत्व हिंदी कविता में नहीं मानते ? क्या पाठकजी उस प्रगतिशील आंदोलन को भी नहीं मानते, या अपरिपक्व मानते हैं, जिसका सूत्रपात प्रेमचंद की अध्यक्षता में हुआ और जिसने हिंदी को नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, शमशेर से लेकर रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर से होते हुए राजकमल, धूमिल, आलोक धन्वा, वेणुगोपाल, राजेश जोशी और वर्तमान पीढ़ी के स्वप्निल श्रीवास्तव, संजय चतुर्वेदी, बोधिसत्व और संजय कुंदन जैसे कवि दिये ? जिस प्रगतिशील आंदोलन ने हिंदी कविता और कथा को, समीक्षा को नयी भाषा, नयी शैली, नये विचारों, नये बिंबों-प्रतीकों से समृद्ध करने न सिर्फ़ उसे जनता के दुख-दर्द-समस्याओं का आईना, समाज को, व्यवस्था को परखने की समझ और उनसे जूझने - पार पाने की ताकत बनाया, और यह सब सिद्ध-प्रमाणित है, उसे पाठकजी अपरिपक्व कहते हैं, तो यह पाठकजी की सिर्फ प्रतिगामिता और अपरिपक्वता ही नहीं, अज्ञानता तथा बुद्धिहीनता भी है. हिंदी के प्राध्यापक और कवि आदरणीय पाठकजी हिंदी साहित्य का इतिहास पढ़ें.

पाठकजी जानते हों या नहीं, आचार्य रामचंद्र शुक्ल का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' मानक सिर्फ इन अर्थों में है कि वह हिंदी साहित्य का पहला ऐसा इतिहास-ग्रंथ था, जिसने हिंदी को साहित्य के इतिहास-लेखन का एक ढांचा दिया. बस, मात्र इतना ही. वरना रामचंद्र शुक्ल ने कबीर की जैसी उपेक्षा अपने उस ग्रंथ में की है, वह उनका विद्वान-ज्ञानी-समीक्षक रूप नहीं, जातिवादी ब्राह्मण रूप है. आचार्य की इस 'ऐतिहासिक' भूल का पश्चाताप हिंदी साहित्य में कबीर को उचित स्थान देने के प्रयास में 'कबीर' जैसा ग्रंथ लिखकर आचार्य के शिष्य हजारीप्रसाद जी ने किया है. अतः पाठकजी जान लें कि हिंदी आलोचना को रामचंद्र शुक्ल ने कोई ऊंचाई नहीं दी. हां, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अवश्य दी. उनकी परंपरा को डॉ. रामविलास शर्मा तथा डॉ. नामवर सिंह ने बढ़ाया ही है. डॉ. नगेंद्र, डॉ. विजयेंद्र स्नातक से लेकर डॉ. शिवकुमार मिश्र, डॉ. रमेश कुंतल मेघ (पाठकजी ने 'तुलसी आधुनिक वातायन से' तो पढ़ा नहीं ही होगा), डॉ. कर्णसिंह चौहान से लेकर डॉ. वीरेंद्र यादव ने हिंदी आलोचना को जो नयी धार दी है, वह डॉ. रामविलास शर्मा और (तमाम विवादों के बावजूद) डॉ. नामवर सिंह की ही देन है. डॉ. बच्चन सिंह, डॉ. भगवान सिंह, डॉ. मैनेजर पांडेय का तो पाठकजी ने नाम भी नहीं सुना होगा. दरअसल पाठकजी का हृदय-युग और बुद्धिकाल आचार्य रामचंद्र शुक्ल के जीवाश्म पर ही अटका हुआ है. पाठकजी के विचार पढ़कर यही लगा कि सिर्फ़ 'पुराना होना' ही उन्हें 'महान होना' लगता है, वरना 'दूसरी परंपरा की खोज' के रचनाकार डॉ. नामवर सिंह और 'निराला की साहित्य साधना', 'भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद', 'लोक जागरण और हिंदी साहित्य' तथा 'हिंदी जाति का साहित्य' सहित समीक्षा, आलोचना तथा साहित्येतिहास के लगभग ७० श्रेष्ठ, विचारोत्तेजक, प्रामाणिक तथा बहुप्रशंसित, मान्य एवं स्वीकृत ग्रंथों के ऋषितुल्य विद्वान विचारक डॉ. रामविलास शर्मा के विषय में पाठकजी कभी 'बरकरार नहीं रख सके' नहीं कहते. सच्चाई तो यह है कि डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय, डॉ. शिवदान सिंह चौहान, डॉ. शिवकुमार मिश्र जैसे विद्वानों ने न सिर्फ डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी की परंपरा को शानदार तरीके से आगे बढ़ाया, बल्कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल

की 'जान-बूझकर' या फिर 'अनजाने' में की गयीं भयंकर ऐतिहासिक ग़लतियों को सुधारा भी, गुरू की ग़लतियों का प्रायश्चित किया.

'पुराना होना ही महान होता है' - पाठकजी की यही धारणा तुलसी, बच्चन, नेपाली, महादेवी की तुलना में मुक्तिबोध, धूमिल और राजकमल को कमतर आंकने की बचकानी और अपढ़ कोशिश के पीछे भी है. अपनी तमाम महानताओं के बावजूद तुलसी 'राम' भरोसे ही हैं और बच्चन, नेपाली, महादेवी भी अप्रासंगिक इतिहास हैं, जिन्हें कभी-कभी गुनगुना लेना ही उनकी उपयोगिता है. माफ़ करें संपादकजी, जो व्यक्ति मुक्तिबोध की 'एक पंक्ति' उद्धत नहीं कर सकता और धूमिल को 'चौंकाने के लिए वासनात्मक बिंब पकड़ने वाला' कहता है, उसे मैं कवि तो क्या, शिक्षित भी मानने को कतई तैयार नहीं हूं. मैं ख़ुद मुक्तिबोध और धूमिल की पंक्तियां पढ़-पढ़कर पूरे के पूरे कवि सम्मेलनों का संचालन कर लेता हूं और तालियों के साथ ही, लोकप्रियता के साथ ही सम्मान भी (उन महान अग्रज कवियों के कर्म के फलस्वरूप) पा लेता हूं. पाठकजी बी. आर. चोपड़ा के वातानुकूलित दफ़्तर मे बैठे फिल्मी लेखक-मंडली का नेतृत्व करते होंगे, मैं गोष्ठियों-कविसम्मेलनों में संचालन करने या कविता सुनाने जाता हूं. हिंदी प्रदेशों में भी, हिंदीतर प्रदेशों में भी, पढ़े-लिखों के बीच भी, अधपढ़ों-अनपढ़ों के बीच भी, महाविद्यालयों-विश्वविद्यालयों में भी, मेलों-ठेलों, जलसों-जुलूसों में भी. सभी ज़गह मुझे मुक्तिबोध-राजकमल-धूमिल की काव्य पंक्तियों को समझकर उत्फुल्ल होने वाले, तालियां बजानेवाले और मुकर्रर कहनेवाले श्रोता मिलते हैं. मेरे संचालन में हुए मुंबई के सैकड़ों कवि सम्मेलन-गोष्ठियां इसकी गवाह हैं, जिनमें से कइयों में आदरणीय पाठकजी भी उपस्थित रहे हैं, अपनी नितांत ही चौंकानेवाली तुकबाज़ ग़ज़लों के साथ.

धूमिल को 'सुयश या कुयश या चर्चा' का आकांक्षी बताना शहीद हुए सिपाही के रक्त से प्रेमिका के होंठ रंगना जैसा आपराधिक कृत्य है. संपादक की हैसियत से आप जरा पाठकजी से पूछें कि उनके अलावा धूमिल को और राजकमल को या मुक्तिबोध को गालियां कौन देता है ? कौन इनसे घृणा करता है ? पाठकजी ने राजकमल की 'मुक्ति प्रसंग' तो नहीं ही पढ़ी होगी, वरना वह ऐसा नहीं कहते, जो कह गये हैं. 'मुक्ति प्रसंग' जैसी कविता बच्चन, महादेवी, नेपाली तो क्या, तुलसी-सूर भी शायद ही लिख पाते. हां, कबीर, ने ज़रूर लिखी है. पाठकजी ने 'मुर्दाघर' और 'आधा गांव' भी शायद नहीं ही पढ़ीं. पाठकजी और ऐसे ही तमाम 'पाठकों' के दक्षिणपंथी दुराग्रही शुद्धतावाद ने हिंदी को कबीर की 'खिचड़ी' जैसे स्वास्थ्यवर्द्धक पथ्य से वंचित रखने का अपराध किया है.

मुक्तिबोध और राजकमल को यहां छोड़ता हूं क्योंकि ये दोनों हृदयहीनों-बुद्धिहीनों के लिए कुछ ज्यादा ही सूखे और कठिन हैं, लेकिन धूमिल के बारे में धुर दक्षिणपंथी पंडितज्जी श्री (डॉ.) विद्यानिवास मिश्र के कुछ उन वक्तव्यों को पाठकजी की सेवा में पेश करना चाहता हूं जो उन्होंने धूमिल की भाषा और बिंबों-प्रतीकों के बारे में धूमिल की मृत्यु के बाद प्रकाशित उनकी कविताओं के संग्रह 'कल सुनना मुझे' की प्रस्तावना में लिखे हैं :

..."धूमिल ने भाषा से सरोकार अपने समकालीन बहुत से रचनाकारों से कुछ ज्यादा रखा. यह भाषा से सरोकार चौंकाने के लिए नहीं, न आंचलिक या भदेसी छटा देने के लिए है. यह सरोकार है - जीवन में संपृक्त व्यक्ति के खुरदुरे पर, कारगर अनुभव को उसके अनुरूप आक्रामक अभिव्यक्ति देने के लिए है."

...'जिन लोगों ने धूमिल की फ़ोश भाषा का बहुत ज़िक्र किया है, उन्हें ऊपर की पंक्तियां ('कब सुनना मुझे' में संकलित कविता 'गांव में कीर्तन' की 'चालाक गिलहरियों का पीछा करती हुई दुधमुही तिन्नी'...) ध्यान से अवश्य पढ़नी चाहिए. दंतहीन शिशु की किलकारी (अत्यंत अहिंस्र सहज उत्फुल्लता) ही धूमिल का वास्तविक चित्र है. यौन और ऊपर से वीभत्स लगनेवाले बिंब, प्रतीक और सादृश्य विधान तो उनकी भाषा को चौखटा देनेवाले हाशिया मात्र हैं. धूमिल मन से इतने स्वस्थ थे कि समूची सामाजिक व्यवस्था के अस्वास्थ्य को सह नहीं पाते थे..." और अंत में यह भी कि -

..."जब कोई धूमिल की भाषा की अशिष्टता की बात मुझसे करता है, तो मुझे... केवल उस कविता की आत्मीयता आंखों को नम करने लगती है. तब कुछ नहीं सूझता, बस यही होता है. यह आत्मीयता पूस की धूप की तरह इतनी संक्षिप्त क्यों थी ? क्यों जलाने वाले दिन ही लंबे होते हैं, क्यों ?"

ध्यान रहे कि ये वक्तव्य उन परम पंडित विद्यानिवास मिश्र के हैं, जो साहित्य में शुद्धतावाद के ध्वजावाहक हैं. फ़र्क सिर्फ़ इतना है कि वह हृदयहीन, रसहीन और ज्ञानहीन नहीं हैं, वरना वह अपनी प्रस्तावना में धूमिल की ये पंक्तियां -

'चुटकुलों सी घूमती लड़कियों के स्तन नकली हैं,
नकली हैं युवकों के दांत.'

उद्धत करते हुए यह नहीं कहते कि 'धूमिल की भाषा लड़ाई की भाषा है ज़रूर, पर इस लड़ाई में अकेलेपन की एक व्यथा है, क्योंकि धूमिल नकली लड़ाइयों के खिलाफ़ हैं, वह हर नकलीपन के खिलाफ़ हैं. कोमलता (लड़कियों के स्तन) और वीरता (युवकों के दांत) दोनों जब नकली हों, तो कवि को..."

मुक्तिबोध, राजकमल चौधरी और धूमिल ने हिंदी कविता को जो नये तेवर, कविता की भाषा को जो नये मुहावरे, कविता को जो नयी शैली दी है, दरअसल वह कुछ नंदलालों और पाठकों को इसीलिए नागवार गुज़रती है कि उसने हिंदी कविता को सवर्णों के मंदिरों-महलों से आज़ाद करके साधारण-जन की झोपड़पट्टियों-गलियों-फुटपाथों-मठों-मैदानों में लाने का अत्यंत ही जनवादी-जनोन्मुखी काम किया है. वरना धूमिल ने (राजकमल-जगदीश चतुर्वेदी ने भी) स्त्री को तुलसीदास के मुकाबले ज्यादा सम्मान और ऊंचा स्थान दिया है. झूठी प्रशंसा की बजाय उन्होंने नारी का युगानुकूल आंकलन किया है.

जो व्यक्ति मात्र ३९ साल की उम्र में मर गया, गांव खेवली और शहर बनारस से बाहर कभी निकला नहीं, ज़िंदगी भर भ्रष्ट अफ़सरों के फंसाये झूठे मुक़दमों में फंसा रहा, कविताई कम और गांवों-ग़रीबों के हक की लड़ाई ज्यादा लड़ता रहा, वह भला यश की कामना में वाग्जाल रचने की ऐयाशी कब करता, कैसे रहता ? ऐसी अश्लील 'वासना' का मौका तो साठ-सत्तर साल तक सुविधासंपन्न जीवन जीनेवालों को ही मिलता है.

अंत में एक बात और पिछले - पचीस वर्षों में जब कभी पाठकजी से मेरी भेंट हुई है, उन्होंने मेरी और मेरी कविताओं की प्रशंसा की है, जबकि मैं स्वयं को मुक्तिबोध, राजकमल, धूमिल, वेणुगोपाल का चरबा (परंपरा का संवाहक कहने का दुस्साहस मुझमें नहीं) कहता हूं, लोग भी यही मानते हैं, तो क्या पाठकजी भेंट होने पर सिर्फ मुंहदेखी झूठी प्रशंसा करते हैं ?

अरविंद भाई, एक बार फिर विनम्रतापूर्वक कहूंगा, कुछ भी छापने से पहले उसे जांच-परख अवश्य लें. मेरी इस टिप्पणी को भी ! आखिर आप भी 'प्रकाशित विचारों से संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं' वाले संपादक तो नहीं ही हैं.

एक आग्रह और, इस टिप्पणी को छापें, तो कृपापूर्वक पूरा, वरना लौटा दें. यह टिप्पणी मेरे दुराग्रहों से नहीं, साहित्य के प्रति निष्ठ, विश्वास और प्रेम से प्रेरित है, जो साहित्य को अज्ञान, कुंठा और कूढ़मगज़ी से बचाने में प्रयासरत है.

१८ अंबिका निवास, पांडुरंगवाडी, डोंबिवली (पू.) - ४२१ २०१.

लघुकथा

सेकंड हैंड

सलीम अख़्तर

उसका भाग्य ही ऐसा था. वह बड़े भाई के छोटे होते हुए कपड़े पहन कर ही बड़ा हुआ. बड़ा हो जाने के बाद भी घर और बाहर छोटू के नाम पर ही उसे संतोष करना पड़ा. लगता है जब वह पहली बार स्कूल गया होगा तब ही उसे नयी स्लेट और स्कूल का नयी यूनिफॉर्म मिली होगी. उसने अपनी पूरी पढ़ाई जहां तक वह पढ़ सका, बड़े भैया की पुरानी किताबों से ही की. पढ़ाई के बाद छोटू ने खूब धक्के खाये. अंततः उसके पिता ने कॉर्पोरेशन के कुछ लोगों को मैनेज कर वालंटरी रिटायरमेन्ट के बदले उसे नौकरी पर लगवा दिया. जब डयूटी आने-जाने में उसे परेशानी होने लगी तो पिताजी ने उसे साइकिल ख़रीद लेने की सलाह दी. छोटू ख़ुश हो गया. परंतु यहां भी भाग्य ने उसके साथ मज़ाक किया. बड़े भैया की इच्छा और समाज में प्रतिष्ठा की चाह में निर्णय स्कूटर के पक्ष में गया. छोटू और बड़े भैया के आर्थिक सहयोग से घर में एक स्कूटर आ गया. जो बड़े भैया के हिस्से में गया. एक तो वह उम्र में उससे बड़े थे और सरकारी नौकरी में अच्छे पद पर भी थे. सो छोटू को बड़े भैया की साइकिल पर संतोष करना पड़ा. साइकिल की घटना के बाद उसके दिल में नयी नवेली फर्स्ट हैंड चीज़ों की इच्छाओं ने सिर उठाना शुरू कर दिया. छोटू ने अपने गुज़रे हुए दिनों की ओर देखा तो उसे ऐसा लगा जैसे वह चलता-फिरता इंसान नहीं, कबाड़ी की दुकान हो.

बड़े भैया की शादी तय हो गयी. शादी में सबसे ज़्यादा अगर कोई खुश था तो वह...छोटू. एक तो घर में रस रंग का माहौल, दूसरे उसने अपने लिए बहुत सी चीज़ें ख़रीदीं. सब नयी नवेली और फर्स्ट हैंड. नया सूट, नये जूते और तो और एक रिस्ट वाच भी उसने अपने लिए ख़रीदी. उसने अपनी इच्छाओं को पूरा करने में कोई कमी न की.

बहुत सा दहेज, नयी नवेली दुल्हन के साथ घर पहुंचा. तमाम रिश्तेदार, दोस्त, भाई हंसी, मज़ाक और आनंद में डूबे हुए थे. अचानक अंधड़ के झोंके की तरह ख़बर आयी, बड़े भैया का एक्सीडेंट हो गया. वे अपने किसी परिचित से मिलने जा रहे थे कि विपरीत दिशा से आती हुई तेज रफ़्तार गाड़ी की चपेट में आ गये. सारा घर मातम में डूब गया. छोटू हतप्रभ हो कर रह गया. उसका दिल इसे मानने को तैयार ही नहीं हो रहा था. लेकिन सच तो सच ही था.

कुछ दिन घर में शोक का वातावरण रहा. दुख के बादल छंटते ही, रिश्तेदार और पड़ोसियों की कानाफूसी, चिंता का विषय बनी. नयी ब्याहता सब की चर्चा का विषय बनी. कुछ लोगों ने दबी ज़ुबान से सही उस पर ही घटना का दोष मढ़ना शुरू कर दिया. घर के बुज़ुर्गों ने आपस में बैठ कर तय किया कि ऐसी बातों को ज्यादा हवा देना उचित नहीं. सबने भाग्य के इस निर्णय के आगे सिर झुका दिया. सबसे ज़्यादा बुरा तो उस बेचारी के साथ हुआ, जिसने आठ दिन भी विवाहित जीवन नहीं गुज़ारा. अब इस बात को संवारने का एक ही रास्ता है कि बहू का पुनर्विवाह कर दिया जाये लगभग सभी की यही राय बनी. एक माह बाद ही विवाह की रस्म हो गयी.

छोटू के इस साहसिक कार्य की सब ने दिल खोल कर सराहना की. इस कार्य पर उसका सामाजिक सत्कार हुआ. वक्ता छोटू की तारीफ़ों के पुल बांधे जा रहे थे. परंतु छोटू की आंखों के सामने से दृश्य चलचित्र की तरह सरक रहे थे...

बड़े भैया की हाफ पैंट, फुल-पैंट, खिलौने, क़िताबें, साइकिल, और अब........!

वहीद मंजिल, अंसारी वार्ड, गोंदिया ४४१ ६०१ (महाराष्ट्र)

पुस्तक समीक्षा

'कलिकथा : वाया बाइपास'

मानवीय कायाकल्प की सशक्त कथा

डॉ. सुमित्रा अग्रवाल

''कलिकथा : वाया बाइपास''- (उपन्यास) : *अलका सरावगी*
प्रकाशक - आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा
मूल्य : १५० रु. (तीसरा संस्करण)

पिछला दशक उपन्यासों का दशक था और इस दशक के अति महत्वपूर्ण और चर्चित उपन्यासों में से एक है 'अलका सरावगी' का 'कलिकथा : वाया बाइपास'. प्रस्तुत उपन्यास १९२५ में जन्मे किशोरबाबू की कहानी है- किस तरह दिल के बाइपास ऑपरेशन के बाद वे अपने कैशोर्य की दुनिया में चले जाते हैं और उन्हीं दिनों की तरह उलझनों से जूझते कलकत्ता शहर में पैदल चक्कर लगाते सड़कों पर घूमने लगते हैं. यह चक्कर मानो एक वर्तुलाकार कालचक्र है जिसमें अतीत, वर्तमान व भविष्य के बीच कोई विभाजन नहीं है. अनायास किशोर बाबू अपने पुरखों की दुनिया में चले जाते हैं. अपने परदादा रामविलास बाबू की दुनिया में लौटना किशोर बाबू की कथा का वह बिंदु है जो दूर रेतीले मारवाड़ से चलकर कलकत्ता में आ बसी एक जाति मारवाड़ी और एक शहर कलकत्ता की साझी कथा रचता है.

किशोर बाबू की एक ज़िंदगी में तीन ज़िंदगियां जी गयी हैं. पहली ज़िंदगी अपने स्कूल के मित्रों सुभाष भक्त शांतनु और गांधी प्रेमी अमोलक के साथ गुज़ारे १९४०-४७ के उथल-पुथल भरे दिनों की है, '४३ का बंगाल का अकाल', '४६ की द ग्रेट कैलकटा किलिंग' और '४७ का विभाजन'. दूसरी ज़िंदगी उसके बाद के ५० सालों की है जिसमें पहली ज़िंदगी की छाया तक नहीं है. तीसरी ज़िंदगी बाइपास ऑपरेशन के बाद उस वर्तमान से शुरू होती है जो अभी हर वक़्त हमारे आसपास उपस्थित है.

'कलिकथा : वाया बाइपास' की कथा उस वृक्ष के समान है जिसका फैलाव जितना भूमि के बाहर है उससे कहीं ज्यादा जमीन के भीतर है. किशोर बाबू की पांच पीढ़ियों की कथा अपने वंशवृक्ष का इतिहास कहते-कहते कलकत्ता के इतिहास का भी आलेखन करती जाती है. प्लासी के युद्ध से लेकर इक्कीसवीं शताब्दी के उदय तक की काल चेतना इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में समाहित है. अतीत, वर्तमान और भविष्य किशोर बाबू की चेतना में एक क्रम में नहीं उभरते, गड्डमगड्ड होकर उभरते हैं. बायपास सर्जरी और उस सर्जरी के बाद सिर के पिछले हिस्से में उभरनेवाला गूमड़ उनके व्यक्तित्व के एक सुप्त पहलू को जगा देने में उत्प्रेरक की भूमिका का निर्वाह करता है. परिवार के अन्य सदस्य उनके इस कायाकल्प से परेशान हैं. पर किशोर बाबू सहज हैं और इसी सहजता से वे अपनी कथा पूरी निखालिसता के साथ २% मिलावट, केवल उतनी मिलावट जितनी खांटी सोने को आभूषण में बदलने के लिए आवश्यक है, के साथ अंकित करवा रहे हैं.

उपन्यास की कथा वर्तमान से प्रारंभ होती है और एक बिंदु पर आकर अतीत में उतर जाती है. परदादा रामविलास बाबू की डायरी के पन्नों में जो काल फड़फड़ा रहा है वह है प्लासी की लड़ाई और उसके पराजित नायक सिराजुद्दौला का काल. किशोर बाबू को लगता है कि ज़िंदगी का ऐसा राज़ इन पीले पन्नों में समाया है जिसे ढूंढ़ निकालने के लिए ही दिल के सर्जन ने उनके दिल की बंद नालियां खोली हैं. यह कालयात्रा किशोर बाबू को अहसास दिलाती है कि आदमी कितना कम जान पाता है, अपनों के बारे में भी. किशोर बाबू की दृष्टि में इस संसार में बीता हुआ कुछ भी खोता नहीं है. वे सारे शब्द जो हमने सुने, जो हमने बोले वे सारे दृश्य जो हमने देखे, वे सारे सुख-दुःख जो हमने झेले. बीती हुई एक घड़ी भी कभी मरती नहीं. वह वहीं अंदर दुबकी रहती है.

प्रस्तुत उपन्यास में किशोर बाबू की कथा है, किशोर बाबू के पिता भूरामलजी की कथा है, दादा केदारनाथजी की कथा है, परदादा रामविलासजी की कथा है और रामविलासजी के पिता की कथा है. बड़े छोटे हेमिल्टन साहब की कथा है. शांतनु, अमोलक और स्वामी सहजानंद की कथा है. साथ ही किशोर बाबू की मां, भाभी शांता और पत्नी सरोज की कथा है. इन्हीं के साथ अनेक अवांतर कथाएं भी आकर इसमें गुंथ गयी हैं. इन सारी कथाओं के छोटे-छोटे अपने में संपूर्ण अंश मिलकर एक कोलाज की सृष्टि करते हैं. इस कथा का दूसरा छोर मारवाड़ की धरती से जुड़ा हुआ है. मारवाड़ की धरा से निकली यह स्रोतस्विनी बंगाल तक पहुंचकर बंगाल के आकाश की छाया से आछन्न तो हो जाती है पर अपनी जड़ों को कभी नहीं भूलती और जब इस जड़ में दीमक लगने लगी तब किशोर बाबू को पहला दिल का दौरा पड़ता है. फिर जब उनके दिल की बंद नलियों को खोलने के लिए बाइपास आपरेशन किया गया तब उस बाइपास ने उन्हें उन सभी सवालों के रूबरू खड़ा कर दिया जिन्हें बाइपास करके वे इस मुकाम तक पहुंचे थे. बाइपास सर्जरी के बाद सड़कें नापते-नापते किशोर बाबू के मापदंड बदल गये हैं. 'टू द पॉइंट' बातें करने के प्रबल पक्षधर किशोर बाबू के लिए अचानक अवांतर ही प्रधान हो उठता है. उनके दिमाग में स्कूल के इतिहास मास्टर रघुनंदन मिश्र की बात बैठी हुई है कि बीते हुए कल को जाने बिना आज का कोई अर्थ पूरी तरह नहीं निकलता.

कथानायक किशोर बाबू का कायाकल्प इस कथा का महत्वपूर्ण नाटकीय मोड़ है. प्रथम बार बाइपास सर्जरी के पश्चात

सिर में लगी चोट के कारण उभरे गूमड़ के चलते और दूसरी बार अमोलक की आत्मा के उनके शरीर में प्रवेश के चलते. अंत में है इस बाइस कैरेट की कथा का वह भाग जो कथा है या कल्पना की वह उड़ान है जो असली से ज्यादा असली लगती है, या स्मृतिविभ्रम है, या विशफुल थिंकिंग है कहना कठिन है. "दरअसल किशोर बाबू जिस झुटपुटी चेतना के इलाके में चले गये हैं वहां घने पेड़ों के झुरमुट के बीच भूमि पर कहीं-कहीं छनकर आती रोशनी के गोल घेरे भर हैं. जहां हर तरफ रोशनी है वहां ऐसे आलोक केंद्र कहां ? और इसीलिए कथा-लेखक किसी ऐसे सत्यपुंज को देख पाने के लिए लगातार इस झुटपुटे में घूमता रहा है. दिन-रात-महीने-साल-साल तक." उपन्यास के अंतिम दृश्य में मित्रों से किया कौल निभाने जब वे नियत स्थान पर पहुंचते हैं तब बाबरी मस्जिद कांड में मृत अमोलक जीवित हो उठता है तथा किशोर बाबू विभ्रम में पड़ जाते हैं कि वे झूठमूठ कोई फिल्म देख रहे हैं या जो घटित हो रहा है वह सचमुच में घटित हो रहा है.

कथानायक किशोर बाबू का व्यक्तित्व उनकी मां की छाया में आकार ग्रहण करता है. किशोर बाबू की मां वह आईना है जिसमें उभरी अपनी छवि के आधार पर किशोर बाबू अपना मूल्यांकन करते हैं. अपनी जाति के अतीत के विषय में किशोर बाबू के मन में उभरी हीनग्रंथि से उनकी मां ही उन्हें मुक्त करती है. उनकी मां की दृढ़ धारणा है कि हम अपने इतिहास को मिटा नहीं सकते. इसलिए उस पर हमें शर्म या ग्लानि महसूस नहीं करनी चाहिए. हमारे पुरखों ने जो ठीक समझा उन्होंने किया. जो हम ठीक समझेंगे हम करेंगे. इतिहास से मुक्त होकर ही हम ठीक से जी सकते हैं. अपनी चरम संवेदनहीनता के दौर में भी जब वे अन्य सबके लिए संवेदनशून्य से बन गये हैं तब भी मां के प्रति उनका भाव वैसा ही बना रहा है. किशोर बाबू के कायाकल्प में इस सत्य का महत्वपूर्ण स्थान है. बीच के कुछ वर्षों में जीवन यथार्थ के गहरे दबाव से वे बदल गये हैं. व्यक्तित्व की वह स्निग्धता पीछे छूट जाती है पर बाइपास सर्जरी के बाद सिर में लगी चोट ने जब उनका कायाकल्प किया तब वे पुनः अपने मूल स्वभाव की ओर लौटते हैं. उनके व्यक्तित्व में आये परिवर्तन के लिए निमित्त बनी यह चोट लेखिका की कल्पना की उड़ान है. थोड़ा चमत्कार, थोड़ी फैंटेसी तो इस उपन्यास की बुनावट का सहज भाग है ही. इसीलिए यह प्रसंग इस कथा की बुनावट के पैटर्न का ही हिस्सा लगता है न कि ऊपर से चस्पां किया गया कोई पैबंद. किशोर बाबू ने सच्चे हृदय से उन लोगों को धन्यवाद दिया जिन्होंने उन्हें ऑपरेशन के बाद यह सिर की चोट दी थी. अपने जीवन के अंतिम हिस्से में ही सही कम से कम मरने से पहले उन्होंने जीवन को उस पूरी गहराई, पूरी समृद्धि उसके पूरे ज्ञान में जानने की पहल तो की.' इसी अवसर पर उनकी सुप्त संवेदनशीलता जागउठती है और अपनी पत्नी तथा बच्चों के लिए वे गहरी टीस का अनुभव करते हैं. वे सोचने लगते हैं कि उनकी दुनिया कितनी सीमित है. - लेकिन क्या उन्होंने ही इन लोगों को ऐसा नहीं बना दिया है ? अब कैसे इन लोगों को अपने अंदर चलती उस दुनिया का हिस्सेदार बनायें जिसे ये लोग सामान्य व्यवहार की बाउंड्री के पार की दुनिया समझते हैं... झक्कियों, सनकियों की दुनिया. कैसे उन्हें समझायें कि तुम लोगों ने जिन चालू मापदंडों को निर्णायक मानकर जो संसार बनाया है उसमें कितना नुकसान है. कितनी चीज़ों को देख पाने, महसूस कर पाने से तुम वंचित रह जा रहे हो. मृत्यु से साक्षात्कार का क्षण कई बार भोक्ता को एक ऐसे बिंदु पर ला खड़ा करता है जहां से वह अपने संपूर्ण जीवन का पुनरावलोकन करता है. लौटती हुई चेतना के धुंधले आलोक में किशोर बाबू भाभी शांता, पत्नी सरोज, बड़े और मंझले मामाजी, चचेरे भाई बनवारी, नर्स पुतुल और उपाध्याय गुरूजी इन सभी के प्रति अपने व्यवहार की संवेदनशून्यता को चीन्ह कर आहत होते हैं. घड़ी की सुई की वर्तुलाकार गति मानो पूरी होती है और किशोरबाबू की चेतना संवेदनशीलता से संवेदनशून्यता तक की और पुनः संवेदनशून्यता से संवेदनशीलता तक की यात्रा पूर्ण करती है. काल चुपचाप अपना काम करता जाता है और जीवन पिछले किनारों को पीछे छोड़ आगे बढ़ता जाता है.

'कलिकथा : वाया बाइपास' में कलकत्ता भी एक समानांतर नायक के रूप में उभरा है. कलकत्ते के बारे में कहावत प्रचलित है कि 'चांदी बरगे (जैसे) भात, सोने बरगी दाल, गिलौरी बरगे फुलके (रोटी). कलकत्ता सै जाना तो इस जहान सै जाना जी.' उपन्यास में एक ओर नायक किशोर बाबू के ग्रेंडफादर रामविलास बाबू हैं जो कलकत्ता पर मुग्ध हैं और जो मानते हैं कि यदि निर्वासन में जाना ही हो तो कलकत्ता ही जाना है क्योंकि वहां गंगा है. कहीं रहना है तो कलकता में रहना है क्योंकि वहां दोनों वक्त गंगा जल से सड़कों की धुलाई होती है. दूसरी तरफ रामविलास के जिगरी दोस्त वसंतलाल हैं जिनके हृदय में राजस्थान के धोले-धोले टीबड़े और उनकी निर्मल रेत बसती है.

'मरुधर म्हारो देस, म्हाने प्यारा लागे जी
धोला-धोला टीबड़ा जी, उजली निरमल रेत
चमचम चमके चांदनी में, ज्यूं चांदी रा खेत,
म्हाने प्यारा लागे जी...!'

रामविलास बाबू का कलकता वास दिन-ब-दिन उनके सिर पर जादू की तरह चढ़ता जाता है तो वसंतलाल का निर्वासन तिल तिल कर बीतता है. वास और निर्वासन इन दोनों मनोदशाओं का चित्रण काल और स्थान के एक ही बिंदु पर खड़े रहकर लेखिका ने किया है.

एक साथ कई शैलियों में लिखा गया यह उपन्यास अलग-अलग देशकाल में आगे-पीछे चलता पाठकों को ऐसी यात्रा के लिए आमंत्रित करता है जिसमें यात्रा की उत्तेजना, उत्सुकता और उत्साह सब हैं. उपन्यास के प्रथम वाचन में जो शिल्प चौंकाता है, आरोपित सा जान पड़ता है, वही दूसरे वाचन में कथ्य की

अनिवार्य मांग के रूप में उभरता है. अतीत, वर्तमान और भविष्य रूपी त्रिकाल में अवगाहन सामान्य शिल्प के सहारे शायद संभव भी नहीं हो पाता. व्यक्ति जब अपनी चेतना में गहरे उतरता है तब काल अतीत, वर्तमान और भविष्य के टुकड़ों में बंटा क्रमशः स्मृति में नहीं उभरता. बल्कि काल के विभाजन की चेतना गड्डमगड्ड हो वह एक समग्र इकाई के रूप में उभरता है.

उपन्यास का शिल्प उसके कथ्य का अविभाज्य अंग है. यह कथ्य इसी शिल्प में ढलकर इतना प्रभावी बन पाया है. 'बाइपास' उपन्यास का बीजशब्द है जो आज के युगधर्म की ओर संकेत करता है. मूल समस्याओं से बचकर बगल से सुविधाजनक रास्ता निकालने का युगधर्म. उपन्यास इस युगधर्म की विडंबना को किशोरबाबू के बाइपास आपरेशन के माध्यम से उजागर करता है जो अंततः उन्हें उन्हीं चीज़ों की ओर ले जाता है जिन्हें उन्होंने अब तक बाइपास कर रखा था - 'एक रास्ता जाम होता था, तो हम दूसरा रास्ता बना लेते थे जो उस रास्ते के दोनों सिरों से जुड़ता था. ज्यादा ट्रैफिक होता, तो हम वन-वे रास्ते बना देते थे. हमने किसी समस्या के कारणों को मिटाने की कभी कोशिश नहीं की. हर समस्या को बाइपास करने के रास्ते ढूंढ़ते रहे. पर अब तो कोई बाइपास काम नहीं कर सकता.' उपन्यास कलि की कथा कहता है पर वाया बाइपास - किशोरबाबू की कथा के बहाने कलकत्ते की कथा. जबसे कलकत्ता महानगर बसा तबसे लेकर इक्कीसवीं शताब्दी की दहलीज पर कदम रखने तक के काल की कथा.

'कलिकथा : वाया बाइपास' कलकत्ते की कथा है. अपने काल की कथा है. उपन्यास वर्तमान के साथ-साथ अतीत की यात्रा और भविष्य में उड़ान भरने के लिए भी आमंत्रित करता है. आंचलिकता के गहरे स्पर्श ने उपन्यास की संप्रेषणीयता एवं विश्वसनीयता को प्रभावशाली बनाकर उसे एक निजता प्रदान की है. कथ्य के अनुरूप शिल्प के चुनाव ने उपन्यास की प्रभावता को बढ़ा दिया है.

जहां तक मानवीयता के साथ गहरे सरोकार का प्रश्न है. 'कलिकथा...' में बखूबी दर्शाया गया है कि किस प्रकार आधुनिक मानव भौतिकता के क्रूर दबाव तले पिसता है. उसकी संवेदनाएं भोथरी भी होती हैं पर अंत यहीं नहीं है. एक बिंदु पर आकर वह अपने काल से बाहर आता है. एक नये मानव के रूप में - अपनी पुरानी केंचुल को छोड़कर मानव की इसी जिजीविषा और सामर्थ्य का दर्शन किशोर बाबू के कायाकल्प में होता है.

बीसवीं शताब्दी के ढलते वर्षों में प्रकाशित 'कलिकथा : वाया बाइपास' महिला लेखन की दृष्टि से तो अपने व्यापक फलक, कथा और पात्रों की तराश के कारण महत्वपूर्ण है ही पर इसी के साथ हिंदी उपन्यास की विकासयात्रा की दृष्टि से भी मील का पत्थर है.

३५/३६, नमित, उष्मा नगर, ऑफ मार्वे रोड, मालाड, मुंबई - ४०० ०६४

समकालीन यथार्थ से रू-ब-रू होती ग़ज़लें

सूर्यकांत नागर

''हमने कठिन समय देखा है''- (ग़ज़लें) : *चंद्रसेन 'विराट'*
प्रकाशक - दिशा प्रकाशन, १३८/१६ त्रिनगर, दिल्ली ११० ०३५
मूल्य : १२० रु.

श्री चंद्रसेन विराट काव्य-जगत में एक जाना-माना नाम है. वे कोई चार दशक से लिख रहे हैं. गीत-ग़ज़ल के क्षेत्र में उनका ख़ासा दखल है. अभी तक उनके ११ गीत-संग्रह तथा १० ग़ज़ल-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं. मंचों पर भी वे अपने कंठ और भाव-व्यंजना की वजह से काफी लोकप्रिय हैं.

'हमने कठिन समय देखा है' विराटजी का ताज़ा ग़ज़ल-संग्रह है जिसमें उनकी ९३ ग़ज़लें संग्रहित हैं. इसमें सामाजिक-राजनीतिक, विसंगतियों-विद्रूपताओं के साथ ईश्वर को भी याद किया गया है. इन ग़ज़लों में हमें कवि के व्यापक जीवनानुभवों के दर्शन होते हैं.

कवि को उसके सामाजिक दायित्व का स्मरण कराते हुए विराटजी आह्वान करते हैं - 'तम, प्रकाश से जीत न जाये, अक्षर-दीप जलाते रहना' अथवा 'सही ज़गह पर, सही समय पर, वाजिब प्रश्न उठाते रहना' या फिर 'आंसू को तेज़ाब बना कर, पत्थर को पिघलाते रहना' यथार्थ की धरती पर खड़े होकर दुनिया को देखने के लिए कवि कहता है - 'सच को देख सपन के पहले, भू को चूम गगन के पहले' या 'श्रद्धा हो तो जुड़ जाते हैं दोनों हाथ नमन के पहले' और 'कम ही मिला गुलाब किसी को, कांटों भरी चुभन के पहले'. लेकिन यहीं पर कवि भाग्यवादी भी ही उठता है - 'मिलता नहीं किसी को कुछ भी, नियत समय के क्षण के पहले.' ये पंक्तियां संघर्ष-शक्ति को कमज़ोर करती हैं.

लोकतंत्र और मीडिया की विसंगतियों पर उंगली रखते हुए कवि कहता है -'ग़लत फैसला, किंतु करें क्या / भीड़-तंत्र का यह बहुमत है' और 'सच में झूठ मिला कर छापें / अख़बारों की यह ख़सलत है'.

'कविता लिख, मत नारा लिख' शीर्षक के तहत ये शेर गौर करने लायक हैं -'अंधियारा, उजियारा लिख / आंसू को अंगारा लिख' और 'सागर से प्यासा लौटा लाख बड़ा हो, खार लिख.' इन पंक्तियों के माध्यम से कवि ने कम शब्दों में बहुत कछ कह दिया है. पर्यावरण-प्रदूषण के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए विराटजी लिखते हैं - 'आरियों से जो अट गया जंगल / कुछ दिनों में ही कट गया जंगल' या 'लाज मरतीं पहाड़ियां नंगी / वह दुपट्टा

था, हट गये जंगल' और 'कुछ नयी बस्तियां बसाने को / टुकड़े-टुकड़े में बंट गया जंगल.' निर्माण के नाम पर किये जा रहे विनाश की ओर लेखन ने बड़ी कुशलता से संकेत किया है. देश में फैली ग़रीबी और उससे उपजी असहायता को ग़ज़लकार ने दूसरी तरह रेखांकित किया है -'आज भी अधपेट, अधनंगा, दरिद्री है बहुत / पर न करता वाद, हम उस निर्वचन से क्या कहें.'

"चोट खायी नहीं" शीर्षक के अंतर्गत कवि के अभिव्यक्ति कौशल तथा अनुभूति की तीव्रता को देखिए - 'आंख क्या जो कभी छलछलाई नहीं' तथा 'रूप क्या ? रूप में जो लुनाई नहीं' और 'कुछ बुराई न हो, यह भलाई नहीं.'

कुल मिलाकर संग्रह विराटजी के सामाजिक सरोकारों को उदघाटित करता है ? हां, कवि का आग्रह तत्समी भाषा और हिंदी के शुद्ध शब्दों को लेकर है. उन्हें भाषाओं का ज्यादा घाल-मेल पसंद नहीं है. इसीलिए वे हिंदी ग़ज़लों में, ग़ज़ल के अनुशासन का पालन करते हुए तथा संभव हिंदी के शब्द-प्रयोग के पक्षधर हैं. कहीं-कहीं ये शब्द क्लिष्ट और संस्कृत-निष्ठ हो गये हैं. उदाहरण स्वरूप, 'शोणित पीने की आदत है.' अब भला श्रोणित का अर्थ कितने लोगों को पता है ! इससे ग़ज़लों के लय और प्रवाह पर भी असर पड़ता है. सहज, सामान्य उपयोग के हिंदी-उर्दू और अन्य भाषाओं के शब्दों के प्रयोग से परहेज नहीं होना चाहिए. ग़ज़लों में लय के साथ पठनीयता व संप्रेषणनीयता होनी चाहिए. जहां भी भाषा की सीमा को भेदकर सहज शब्दों का प्रयोग किया गया है, वहां विराटजी की ग़ज़लें अधिक अर्थवान, पठनीय और प्रवाहमय हो गयी हैं. बावजूद इन सबके विराटजी की ग़ज़लें, हिंदी काव्य-जगत में मील का पत्थर साबित होंगी, इसमें कोई संदेह नहीं.

८१/२, बैराठी कॉलोनी, इंदौर - ४५२ ०१४.

जीवित सपनों की साक्षी कविताएं !

डॉ. दामोदर खड़से

"मेरे रहते" - (कविता-संग्रह) - *हेमंत*
प्रकाशक - ग्रंथ भारती, वेस्ट कांती नगर, दिल्ली ११० ०५१
मूल्य : १५० रू.

'मेरे रहते' कविता संग्रह हेमंत के रहने का एक जीवंत दस्तावेज़ है. तेज रफ़्तार ज़िंदगी की ऊबड़ खाबड़ दुनिया से गुज़रते हुए हेमंत ने जो कुछ भी भीतर तक अनुभव किया, उसे ईमानदार शब्दों में बांधकर हमारे वर्तमान की गवाही दे दी है. संग्रह में संकलित कविताएं केवल कवि की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति न होकर, हमारे समय के तमाम विरोधाभासों, असमंजस, विवशता, क्रूरता, आतंक, भय, आकांक्षा, प्रेम, आशा का मुखर बयान बन पड़ी हैं. कविताओं में प्रयोग किये गये भाषिक मुहावरे ताज़गी लिए हुए हैं. जीवन के यथार्थ से गुज़रते हुए हेमंत ने अत्यंत गहराई से व्यक्ति के संवेदना-संसार को छुआ है. एक ही संग्रह में उनके यथार्थबोध, दर्शन और सूक्ष्म अनुभूतियों को देखा जा सकता है. जीवन-क्रम की परिभाषा में कवि कहता है -

'हम सब इस त्रिकाल ठहरे जल में
जलकुंभियों की तरह डोलते हैं...
...अपने अंदर
जल का स्रोत छुपाये
धरती की कोख में छुपे रहते हैं.'

दर्शन को शब्दों में ढालते हुए हेमंत ने यथार्थ की दुनिया को कभी अनदेखा नहीं किया है. कविताओं को प्रेम के उत्कट धागों में पिरोते हुए, जीवन के तमाम दृश्य इसमें इतनी सहजता से गूंथे गये हैं कि कविता कब पूर्णता पा जाती है, पता ही नहीं चलता. 'न मैं मंदिर, न मैं मस्जिद' में कुछ यही चित्र उभरता है-

'लोग मुझे नास्तिक कहते हैं
आश्चर्य ! क्यों ?
मेरे सामने दीवार पर
मेरी मेहबूबा की झील-सी
आंखों वाली तस्वीर है !
उसी में से तो मुझे सुनाई पड़ रहे हैं
गीता के श्लोक, वेद के मंत्र
कुरान की आयतें, अवेस्ता की गाथाएं
इंजील के सरमन, कन्फ्यूशियस के सु-बचन
कबीर के सबद, सूर के भजन...
... हां, उन झील-सी आंखों में
धरती आकाश भी मिलते हैं,
फिर भी,
लोग मुझे नास्तिक कहते हैं !'

इन कविताओं में प्रेम की अथाह अभिलाषा है. पर यह प्रेम केवल अपने समय को गुनगुनाने का आलंबन भर नहीं है. प्रेम जीवित होने का प्रमाण देता है. प्रेम शक्ति देता है. प्रेम दृष्टि देता है और वह सब दिखता है, जिसे खुली आंखों से देखना उतना आसान नहीं. 'मैंने प्यार चाहा है' व्यक्ति से समष्टि की यात्रा का बयान है -

'मैंने प्यार चाहा है
क्योंकि वह ताक़त देता है
जीने की, ज़िंदा रहने की
अकेलेपन से मुक्ति की
उस अथाह गहराई को देखते रहने की
जो दुनिया के नर्क की सच्चाई है...'

इस प्यार को पाकर कवि अपने आसपास के नर्क को बदलना चाहता है -

'इस प्यार को पाकर मैं,
समा जाना चाहता हूं मानव की पीड़ा में
चीत्कार, भूख, बदहाली
...खून होता टपकता पसीना,
असमय बुढ़ाती जवानी... '

जीवन की तमाम विसंगतियों, शोषण, विवशता और लाचारी को इन कविताओं ने मुखरित किया है. सामाजिक असमानता, छले जाते लोग और शोषकों को ढूंढ़कर उन्हें बेनक़ाब भी किया गया है. 'ड्रैक्यूला' कविता शोषण के चेहरे की वीभत्सता को रेखांकित करती है -

'एक गढ़ा हुआ सत्य है ड्रैक्यूला
या ड्रैक्यूला ने सत्य गढ़ा है
न जाने कितनी गरदनों का
पीकर रक्त...'

हेमंत जीवन की तमाम विसंगतियों को मिटाने के लिए कविता का सहारा लेते हैं. इस विसंगत समय में वे एक ऐसा गीत रचना चाहते थे कि सारे भेद मिट जायें. इसके लिए वे धरती, सूरज, चांद और तमाम नियमों से अंधेरा मिटाने के लिए, रोशनी लाने के लिए बहुत बेचैन ज़िरह करते हैं -

'मैं भोर के गीत
रात में गाना चाहता हूं,
मैं रात-दिन का भेद
मिटा देना चाहता हूं...!'

इंसान की बेहतरी के लिए कवि ईश्वर तक से ज़िरह करता है. धर्मों-संप्रदायों में, मंदिर-मस्जिदों में जो ईश्वर है, वह आदमी के श्रम की प्रतिकृति है. इसकी याद वे कबीर की अनुभूति में करते हैं -

'आदम की रची दुनिया में
मिट्टी पत्थर के तुम निर्जीव ही रहे
शायद डर गये, आदम की शक्ति से
या शायद इस सत्य से
कि श्रम ही बनाता है,
पत्थर को भगवान... !'

यह प्रतिक्रिया शायद इसलिए हो सकती है कि आज चारों ओर 'कलयुगी सम्राट' के राज में जो स्थितियां हैं वे बहुत भयानक हैं -

'झूठ,
सुखी, ऐश्वर्यमय, सम्मानित
सत्य
गरीबी, तिरस्कार और दुखों से
घायल, आह !'

'आतंकवाद' के खिलाफ सारी दुनिया चौकन्नी हो उठी है. सब जानते हैं, इसका जन्म कैसे हुआ. सत्ता केंद्रित राजनीति, क्षुद्र स्वार्थ और तत्काल हासिल करने की लालसा ने छीना-झपटी शुरू कर दी और देखते-देखते आम आदमी के हिस्से आतंक आया, जिसके लिए उसका कोई - कोई अपराध नहीं था- 'आतंकवाद' कविता में हेमंत ने इसकी जड़ें खोजनी चाही-

'वे देख रहे हैं
कैसे मैं सूने, सन्नाटा खिंचे पहरों में
उन घरों को तलाशता हूं
जहां अपहरण करने को
गरीबों के बेकार बेटे हैं
जो चंद निवालों के लिए
थाम लेते हैं बंदूकें
और महाराणा प्रताप देखते रह जाते हैं
स्तब्ध, ठगे से
अपनी घास की रोटी लिये हाथ में !'

'आतंकवाद' पर लिखते हुए हेमंत की इस लंबी कविता में हमारे समय के भय, चीत्कार और हिंसा का न सिर्फ चित्रण है, बल्कि इससे झुलसती मानवता का रुदन भी है. अंतहीन दहशत और बिलखते लोगों की वेदना है. कितने ख़ौफनाक तरीके से आतंकवाद कह रहा है -

'गांधी की मशाल को मैं
दावानल बनाकर कश्मीर की घाटियां
झुलसाने पर तुला हूं
गांधी-जिन्ना के कंधे पर हाथ रखे
'नो मेन्स लैंड' पर खड़े हैं,
दोनों खामोश हैं.'

हेमंत की इन कविताओं के विषय बहुत व्यापक हैं. इन्सानी रिश्तों की महीन अनुभूतियों को बहुत सूक्ष्मता से शब्दबद्ध किया गया है. साथ ही, आधुनिक जीवन की विसंगतियों को, भौंडेपन को 'आधुनिक दंपत्ति' में; सपनीली उम्र में होटलों में प्लेटें धोते किशोर अंगुलियों को 'वह नन्हा' में; लक्ष्मीपुत्रों के ऐश्वर्य, खजाने भरने वाले मजदूर के पसीने को 'मजदूर' में; संदूकों में बंद औरतों की सिसकियों को 'लौटा दो' में; अमृतमयी गंगा को प्रदूषित और विषपूर्ण बनाने वालों वंशजों को संबोधित करने वाली कविता 'मां हूं न' में; तपेदिक से न मरती तो दहेज में मरने को विवश चुनमुनिया की तड़पन 'गरीब की बेटी' जैसी कविताओं में हेमंत ने हमारे आसपास के दुख-दर्द, पीड़ा और आक्रांत को वाणी दी है.

हेमंत की कविताओं के विषय हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी से लिये गये हैं. इन कविताओं में बौद्धिक-मायाजाल न होकर सीधी-सपाट सहज और सरल बात बहुत प्रभावी और गतिमान शैली में कही गयी है. मात्र तेईस वसंत के साक्षी हेमंत ने अपनी

छोटी-सी उम्र में बहुत लंबी ज़िंदगी को बयान किया है. कविताओं में ज़गह-ज़गह मृत्युबोध जहां चौंकाते हैं, वहीं किसी आभास को सच्चाई की ओर मोड़ भी देते हैं. ऐसा लगता है कि उन्हें मृत्यु का आभास हो गया था. जीवन के आखिरी पड़ाव में यदि आदमी मृत्यु का या अपने न होने का चिंतन करता है तो उसमें अस्वाभाविक कुछ नहीं लगता. परंतु भरपूर युवा अवस्था की परिधि में यशस्वी ढंग से कदम रखने वाला युवक मृत्यु के आभास को जीता है तो यह एक चौंकाने वाली बात है ही. ऐसा भी नहीं कि भौतिक जीवन के अपयश ने किन्हीं पराजित क्षणों में इन आभासों को सोचा हो. कविताएं बताती हैं कि हेमंत एक सशक्त इरादों, सपनों को सच्चाई में ढालने और अन्याय-शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए ताउम्र जूझ सकते थे. सॉफ्टवेयर इंजीनियर होने के नाते वह अपने घर-परिवार, माता-पिता और अपनी निजी इच्छाओं-आकांक्षाओं को संवार सकते थे. संभवतः अत्यंत संवेदनशील कवि होने के कारण उन्होंने पीछा करती मृत्यु को महसूस किया होगा. इसीलिए कविताओं में वह कह उठे - 'ऐसा कुछ भी नहीं होगा मेरे बाद, जो न था मेरे रहते...' दुनिया, दुनियादारी, दुनिया के लोग सब हमेशा की तरह रहेंगे. सब कुछ होगा, सिवा हेमंत के. यह हेमंत ने कैसे जाना होगा. हेमंत की संवेदनाओं में, विचारों में, यह अंत समय किसी झटके के साथ नहीं एक साये की तरह कविताओं में अनुभव किया जा सकता है. 'मैं लौट नहीं पाऊंगा' कविता अधूरी है. समंदर में बहुत गहरे जाने से टोकने पर हेमंत कविता में अपनी मां से कहते हैं -

'वादा करो
तुम मुझे नहीं पुकारोगी
तब मुझे पीड़ा होगी
मैं लौट नहीं पाऊंगा न मां
उस अनंत से...'

डायरी में लिखी इस कविता के अधूरेपन को उन्हें दूर करना था, इसीलिए टिप्पणी लिख दी - 'नींद आ रही है, अब कल लिखूंगा' पर हेमंत अनंत की यात्रा पर निकल गये, कविता अधूरी ही रह गयी. कविता भीतरी संवेगों को अपना कर जीवन का प्रतीक बन गयी है. कविता और जीवन दोनों इतनी ईमानदारी से आपस में घुल-मिल गये हैं कि पता ही नहीं चलता कब जीवन ख़त्म हुआ, कब कविता शुरू हुई. छोटी-सी उम्र में एक बड़ी ज़िंदगी समेटकर हेमंत ने कई सपने भी संजोये. सपने कभी नहीं मरते. हेमंत के सपने भी जीवित हैं- 'मुझे जियो' में वे कहते हैं-

'अब न दरिया-ए-चनाब में वह दम है
कि वह किसी सोहनी को
अपने आगोश में ले ले
न वह मरूस्थल, जो सस्सी को
अपने में समा ले.
न वह ज़हर, जो हीर के, होठों से लगे !

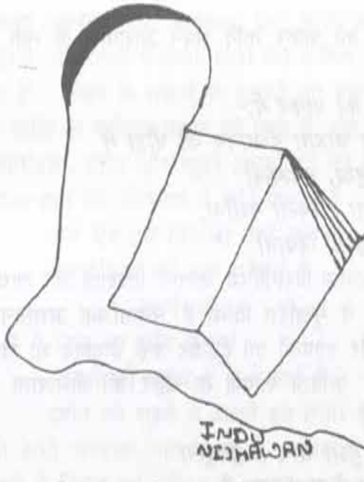

और अच्छा ही हुआ जो काल बदल गया
वरना मेरे हिस्से की ज़िंदगी कौन जीता ?
हां, तुम्हें जीना है
क्योंकि मैंने तुम्हारे पलकों पर सपने सजाये हैं
मेरे प्यार ने मोहक संवारा है तुम्हें
मेरे दिल की आंच ने
तुम्हारे मोम जिस्म को सांचे में ढाला है

मुझे जीने की बहुत चाहत थी
मैं ज़िंदगी को डूबकर पाना चाहता था
और इसीलिए तुम्हें
मेरे हिस्से की ज़िंदगी जीनी है
आओ... आओ मेरी प्रिये
मुझे रांझे, पुन्नू और महिवाल का धर्म निभाने दो
मिट जाने दो मुझे
आओ, जीवंत करो मेरे मिटने को
उठो, और जियो !
हां, मुझे जियो !!'

'मेरे रहते' की कविताओं ने हेमंत को भरपूर जीवंत किया है. ये कविताएं हेमंत की धड़कनों, स्पंदनों और संवेगों की प्रतीक बन गयी हैं. हेमंत का न रहना एक भयानक सच्चाई है, जिसे आत्मीय कभी नहीं स्वीकार पायेंगे, परंतु कविताओं ने हेमंत को अपने में बहुत आत्मीयता से संजो लिया है. इसलिए हेमंत की अनुभूतियां उनकी नितांत अकेली अनुभूतियां न रहकर पाठकों के लिए संवेदनशीलता का पर्याय बनकर सहज ही उभर आती हैं. कविताएं साक्षी हैं कि अकाल-मृत्यु ने हिंदी का एक संभावनाशील कवि छीन लिया है.

✆ डी/डी-८, वृंदावन हॉ. कॉ. सो.,
शांतिवन के पास, कोथरूड, पुणे ४११ ०२९

जीवन के आसपास से ली कहानियां !

✍ प्रो. नंदलाल पाठक

''पथ के गवाह''- (कहानी-संग्रह) : *भगीरथ शुक्ल*
प्रकाशक - शिव प्रकाशन, शिव पार्वती निवास, मार्केट रोड, बोईसर, ठाणे ४०१ ५०१ **मूल्य** : १०० रु.

'पथ के गवाह' भगीरथ शुक्ल की २७ कहानियों का संग्रह है. पुस्तक का नामकरण संग्रह की पहली कहानी 'पथ के गवाह' पर आधारित है. ये कहानियां समय-समय पर विभिन्न पत्रिकाओं में छपती रही हैं. इनका रचनाकाल चार दशकों से अधिक का विस्तार समेटे हुए है.

हिंदी कहानी का क्षेत्र अब बहुत व्यापक हो गया है. हिंदी भाषी क्षेत्र के बाहर भी हिंदी भाषी और इतर भारतीय भाषा-भाषी हिंदी कहानियां लिख रहे हैं. हिंदी भाषी भगीरथ शुक्ल मराठी क्षेत्र महाराष्ट्र के महानगर, मुंबई के पड़ोस के निवासी हैं. संग्रह की सभी कहानियां उन्होंने अपने जीवन के आसपास से ली हैं. उनके परिवेश की गंध और सुसंस्कारी व्यक्तित्व की छाप उनकी प्रत्येक कहानी पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है. चार दशकों में लेखक ने मनुष्य के भीतर छिपी उन संभावनाओं की तलाश की है, जिनके बल पर बुरा से बुरा आदमी अपनी बुराइयों पर विजय प्राप्त कर सकता है. अधिकांश कहानियां उपदेशात्मकता से बचते हुए कोई न कोई आशाप्रद संदेश देती हैं. कई कहानियां इस विश्वास को बल देती हैं कि यदि आप औरों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं तो प्रकृति, समय या परिस्थितियां आपसे उस दुर्व्यवहार का बदला अवश्य लेंगी. ऊपर वाले के यहां देर हो सकती है, अंधेर नहीं. प्रत्येक क्रिया की विरोधी प्रतिक्रिया होती है. यह सिद्धांत जितना बाह्य जगत पर लागू होता है, उतना ही भीतरी जगत पर भी. कथ्य की दृष्टि से यदि वर्गीकरण करना ही हो, तो शुक्लजी की कहानियां गांधीवादी, आदर्शवादी, नैतिकतावादी, सुधारवादी कही जा सकती हैं. ये कहानियां एक ऐसे भले आदमी द्वारा लिखी गयी हैं, जिसका भलाई की जीत में, 'सत्यमेव जयते' में दृढ़ विश्वास है. लेखक हृदय-परिवर्तन में अटूट आस्था रखता है. उसका विश्वास है कि यदि दिन भर का भूला हुआ शाम तक घर आ जाये, तो उसे भूला नहीं मानना चाहिए. लेखक की आस्था है कि भगवान जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है. उनके अनेक पात्र प्रायश्चित या पश्चाताप करते हैं.

हत्या, अपराध, हिंसा, तस्करी, खून-खराबा इत्यादि की खोज करने वालों को इस संग्रह से निराशा ही मिलेगी. कामवासना को महिमामंडित करने वाले लेखकों की जमात से भी शुक्लजी कोसों दूर हैं. सामाजिक बीमारियों को लेखक ने चिकित्सक की दृष्टि से देखा है. ये कहानियां भाई, बहन, बहू, बेटी - किसी के भी हाथ में दी जा सकती हैं. ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसके बारे में कहना पड़े - केवल वयस्कों के लिए. यह तो रही कथ्य की बात. इन कहानियों को शिल्प की दृष्टि से देखना भी उपयोगी होगा. संग्रह की अधिकांश कहानियां निबंधात्मक हैं. कुछ कहानियां रेखाचित्र और संस्मरण की शैली में लिखी गयी हैं. प्रत्येक कहानी आदि से अंत तक एक समग्र चित्र है. किस्सागोई से बहुत दूर हैं ये कहानियां. कहीं-कहीं तो ऐसा लगता है कि लेखक ने अपनी मान्यताओं को स्पषट करने के लिए एक निबंध के बीच कोई घटना या कोई मोड़ भर डाल दिया है. 'संगीत शत्रु' ऐसी ही कहानी है. कथानकों में उत्सुकता बनाये रखने की शक्ति है. इससे पठनीयता बनी रहती है. उलझाव कहीं नहीं है. कोई एक कण, कोई एक क्षण, कोई एक व्रण कहानी का रूप ले लेता है. एक ही कहानी में अनेक उतार-चढ़ावों का न होना कहानी की उपलब्धि भी है और सीमा भी.

संग्रह की पहली कहानी ही लीजिए. 'पथ के गवाह' प्रत्येक पाठक को अपने सीने पर हाथ रख कर सोचने को विवश करती है. यह कहानी मानव मन का एक दर्पण भी है. कहानी सामान्य भारतीय पति-पत्नी की है. पति न नायक है, न खलनायक. फिर भी कहानी मन को छूती है. मन को छूने की शक्ति सभी कहानियों में है, मन को झकझोरने वाली कहानियां कुछ ही हैं. हमारा भारतीय जीवन जिस ढर्रे पर चलता है, उसमें इतने बड़े-बड़े मोड़ कम आते हैं जो मन को हिलाने वाली कहानी का रूप ले सकें. जैसे संग्रह की एक कहानी 'कन्फेशन' लीजिए. यह अखबार में छपी हुई एक घटना या सूचना भी हो सकती है. सपाटबयानी का यह दोष चंद्रमा के कलंक के समान लिया जा सकता है.

शुक्ल की कहानियों में पकड़ है. यदि वे अपनी बात निबंध में कहते तो आप आधा पढ़कर छोड़ भी सकते थे. पर कहानी तत्व का जो समावेश उन्होंने अपनी कहानियों में किया है, वह आपको आद्यंत बांधे रखता है. संग्रह मुझे पठनीय लगा. लेखक की साधना सफल है.

१२५/१२ 'अमिताभ,' प्रताप सोसायटी के पीछे, चार बंगला, अंधेरी (प.), मुंबई ४०० ०५८

'पुस्तक समीक्षा' स्तंभ के अंतर्गत हम सद्यः प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा नियमित प्रकाशित करते हैं. प्रकाशक बंधुओं से निवेदन है कि वे हमें समीक्षार्थ पुस्तकों की दो-दो प्रतियां भेजें. - सं.

लेटर बॉक्स *(....कुछ और प्रतिक्रियाएं)*

❀ 'कथाबिंब' का ताज़ा अंक मिला. आभारी हूं. बहुत ज़ल्द इस पत्रिका ने साहित्यिक पत्रिकाओं में अपनी पहचान बना ली है. यह आपके श्रम और सद्प्रयास का फल है. बधाई.

इस अंक की सभी रचनाएं स्तरीय हैं. कहानियों में 'वैतरण' (कमल), 'एक चिट्ठी अहमदाबाद से' (विजय) एवं 'नया चेहरा' (राकेश कुमार सिंह) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं. 'वैतरण' में बाज़ार और उसके तंत्र की निस्पृहता का उल्लेख है और 'एक चिट्ठी अहमदाबाद से' में गुजरात दंगे का वीभत्स किंवां बेबाक चित्रण. जबकि 'नया चेहरा' में मध्यमवर्गीय मुस्लिम समाज में व्याप्त कठमुल्लापन को सफलतापूर्वक उजागर किया गया है. इस कहानी को रचकर कथाकार राकेश कुमार सिंह ने एक जोख़िम भरा कदम उठाया है. इस बात का उल्लेख उन्होंने इस अंक के अपने आत्मकथ्य 'लो मैं गुल्लक तोड़ता हूं' में भी किया है. लेकिन इससे घबराने की आवश्यकता नहीं है. सद्साहित्य के सृजन में तमाम वैचारिक प्रतिबद्धताओं के बावजूद अभिव्यक्ति का इतना ख़तरा तो रचनाकार को उठाना ही होगा, सो उन्होंने उठाया. तीनों कथाकारों को बधाई और हार्दिक शुभकामनाएं.

✣ प्रेमकिरण

कमला कुंज, गुलजार बाग़, पटना-८०० ००१

❀ 'कथाबिंब' निरंतर अपनी उपस्थिति एक रुचिवान पत्रिका की तरह दर्ज़ किये हुए है. यह जानकर, बल्कि देखकर अच्छा लगता है. अच्छी छपाई, अच्छी सामग्री और अच्छा संयोजन. बावजूद आपकी व्यक्तिगत विचारधारा के जो कभी-कभी संपादकीय में अनायास ही प्रकट होती है. रचना चयन में आपका रुख़ संतुलित होता है.

✣ शैलेंद्र चौहान

ए-२ कंचनगीत, ५७ शिवाजी नगर, नागपुर ४४० ०१०

❀ एक लेखक मित्र के सौजन्य से 'कथाबिंब' (अप्रैल-जून २००२) पढ़ने का सौभाग्य मिला. काफी अच्छा लगा. अपनी हिंदी को स्तरीयता प्रदान करने एवं पाठकों का सुरुचिपूर्ण मनोरंजन करने हेतु आपका श्रम प्रत्येक पृष्ठ में प्रतिबिंबित है. छहो कहानियां मन के कई तारों को टन्न मारती गयीं. कमल की कहानी 'वैतरण' ने निम्न मध्यमवर्गीय नौकरी पेशा व्यक्ति की त्रासदी का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हुए अनेक विडंबनाओं को निशाना बनाया है. 'वैतरण' का गुणाधर काफ़्का की कहानी 'मेटामॉरफॉसिस' के तिलचट्टा बन गये ग्रेगोरी की याद दिला गया. राकेश कुमार सिंह की कहानी 'नया चेहरा' ने भी कुछ सोचने के लिए मज़बूर किया. कच्चे अंडे फोड़कर पी लेना या इससे लोहराइन-फोकराइन बास का आना - दो व्यक्तियों का बेसिक डिफरेन्स दर्शाता है, लेकिन यह इतनी आसान बात नहीं रह जाती जब व्यक्ति ग्रुप का नुमाइंदा होने लगता है, फिर चेहरे बदल जाना कोई मुश्किल नहीं. अन्य कहानियां भी अच्छी लगीं. वर्तनी संबंधी संपादकीय चिंता एवं सलाह से मैं सहमत हूं तथा उनके प्रयासों के लिए आपको साधुवाद देता हूं.

✣ जय प्रकाश दास,

द्वारा वीरेंद्र पूर्वे, सिंघाड़ा पोखरा, कालीमंदिर, दुमका ८१४१०१

❀ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून अंक मिला. संतोष श्रीवास्तव, विजय, पदुमी गर्ग और राकेश कुमार सिंह की कहानियां, बलराम अग्रवाल और डॉ. प्रद्युम्न भल्ला की लघुकथाएं तथा नरेश अग्रवाल और राजेंद्र तिवारी की ग़ज़लें अच्छी लगीं. विजय जी तो समकालीन हिंदी कहानी के सदाबहार कहानीकार हैं. उनका लोहा मानना ही होगा. हाल में प्रकाशित उनके संग्रह 'घोड़ा बाज़ार' की अधिकांश कहानियां अत्यंत प्रभावशाली और उल्लेखनीय हैं.

'आमने/सामने' में राकेश कुमार सिंह ने मुझे याद कर एक बार पुनः अपनी विनम्र रचनाशीलता का परिचय दिया है. मुझे इस युवा रचनाकार में बहुत संभावनाएं तब ही नज़र आयी थीं जब 'आंचलिक कहानियों' पर काम करते हुए उनकी कहानी मंगायी थी. संकलन में उनकी कहानी नहीं जा पायी, उसका कारण उनकी कहानी में किसी कमी के कारण नहीं, पुस्तक की पृष्ठ संख्या की सीमा से बंधा होना था. आरा के ही एक अन्य प्रतिभाशाली रचनाकार, जिन्हें राकेश ने याद किया है...अनंत कुमार सिंह दूसरे प्रतिभाशाली कथाकार हैं और विनम्र भी. यहां मुझे कमलेश्वर जी की बात याद आती है कि, 'वह हर रचनाकार विनम्र होगा, जिसके पास रचना होगी.' और अपनी ओर से जोड़ दूं- 'रचना केवल प्रतिभाशालियों के पास होती है.'

✣ डॉ. रूपसिंह चंदेल

११ए/२२, शक्तिनगर, दिल्ली ११०००७

❀ आप कृपापूर्वक 'कथाबिंब' के अंक लगातार भिजवा रहे हैं, इसके लिए हृदय से आभारी हूं. पत्रिका का प्रत्येक अंक स्तरीय, पठनीय तथा संग्रहणीय होता है. मुखपृष्ठ का तो कहना ही क्या ! ईश्वर आप पर अपनी कृपा बनाये रखे, और आप इसी प्रकार साहित्य सेवा करते रहें, यही कामना है.

✣ कृष्ण कुमार शर्मा

१५२(११९) पक्की ढक्की, जम्मू (जे.एंड.के.) १८०००१

❀ 'कथाबिंब' का नया अर्थात अप्रैल-जून ०२ का अंक मिला. इस बार भी आपने रचनाओं के चयन में कई लब्ध प्रतिष्ठ पत्रिकाओं को पीछे छोड़ दिया है. संतोष श्रीवास्तव और अनिमा नरेश की कहानियां बरबस अभिभूत करती हैं. लघुकथाओं और कविताओं के चुनाव में कृपया अतिशय उदारता न दिखलायें. आशा करता हूं कि पत्रिका के स्तर को बनाये रखेंगे.

✣ सुरेश पंडित

८०३, स्कीम नं. २, लाजपत नगर, अलवर (राज.) ३०१००१

हमकदम लघु-पत्रिकाएं

(प्रस्तुत सूची में यदि कोई त्रुटि रह गयी हो या किसी पत्रिका का प्रकाशन बंद हो गया हो तो कृपया सूचित करें.)

बराबर (पा.) - ए. पी. अकेला, ५ यतीश बिजनेस सेंटर, इर्ला सोसायटी रोड, विलेपार्ले (प.), मुंबई - ४०० ०५६

कथादेश (मा.) - हरिनारायण, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., १००१ इंद्रप्रकाश बिल्डिंग, २१ बाराखंभा रोड, नयी दिल्ली - ११०००१

तिब्बत देश (मा.) - विजय क्रांति, १० रिंग रोड, लाजपत नगर-४, नयी दिल्ली - ११० ०२४

दाल-रोटी (मा.) - अक्षय जैन, १३ रश्मन अपार्टमेंट, एस. एल. रोड, मुलुंड (प.), मुंबई - ४०० ०८०

वागर्थ (मा.) - प्रभाकर श्रोत्रिय, भारतीय भाषा परिषद, ३६-ए, शेक्सपीयर सरणी, कलकत्ता - ७०० ०१७

साहित्य अमृत (मा.) - विद्यानिवास मिश्र, ४/१९ आसफ अली मार्ग, नयी दिल्ली - ११० ००२

शुभ तारिका (मा.) - उर्मि कृष्ण, ए-४७ शास्त्री कॉलोनी, अंबाला छावनी - १३३ ००१

शिवम् (मा.) - विनोद तिवारी, जय राजेश, ए-४६२, सेक्टर-ए, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०३९

अरावली उद्‌घोष (त्रै.) - बी. पी. वर्मा 'पथिक', ४४८ टीचर्स कॉलोनी, अंबामाता स्कीम, उदयपुर ३१३ ००४

अपूर्व जनगाथा (त्रै.) - डॉ. किरन चंद्र शर्मा, डी-७६६, जनकल्याण मार्ग, भजनपुरा, दिल्ली - ११० ०५३

अभिनव प्रसंगवश (त्रै.) - डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ, ४/१०६, मोती मिल कंपाउंड, अलीगढ़ (उ. प्र.)

असुविधा (त्रै.) - रामनाथ शिवेंद्र, ग्राम-खड्डई, पो. पन्नूगंज, सोनभद्र - २३१ २१३ (उ. प्र.)

अक्षरा (त्रै.) - गोविंद मिश्र, मं. प्र. रा. समिति, हिंदी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - ४६२ ००२

आकंठ (त्रै.) - हरिशंकर अग्रवाल / अरुण तिवारी, महाराणा प्रताप वार्ड, पिपरिया ४६१ ७७५ (म. प्र.)

अंचल भारती (त्रै.) - डॉ. जयनाथ मणि त्रिपाठी, ६/५४ देवरिया-रामनाथ, देवरिया - २७४ ००१

अंतरंग (त्रै.) - प्रदीप बिहारी, चतुरंग प्रकाशन, मेनकायन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५१ १३४

अंतरंग संगिनी (त्रै.) - दिव्या जैन, गोविंद निवास, सरोजिनी रोड, विलेपार्ले (प.), मुंबई - ४०० ०५६

कंचन लता (त्रै.) - भरत मिश्र 'प्राची', डी-८, सेक्टर-३ए, खेतड़ी नगर - ३३३ ५०४

कृति ओर (त्रै.) - विजेंद्र, सी-१३३, वैशाली नगर, जयपुर - ३०२ ०२१

कथन (त्रै.) - रमेश उपाध्याय, १०७, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-३, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली - ११० ०६३

कथा समवेत (त्रै.) - शोभनाथ शुक्ल, कल्लूमल मंदिर, सब्जी मंडी, चौक, सुल्तानपुर - २२८ ००१

कारवां (त्रै.) - कपिलेश भोज, पो. सोमेश्वर, अल्मोड़ा - २६३ ६३७

कल के लिए (त्रै.) - डॉ. जयनारायण, 'अनुभूति', प्लानिंग कॉलोनी, अलीगढ़ (उ. प्र.)

कहानीकार (त्रै.) - कमल गुप्त, के ३०/३६ अरविंद कुटीर, वाराणसी २२१ ००१

गीतकार (त्रै.) - साथी छतावरी, ९३३/२ तंवर मार्ग, नज़फगढ़ रोड, नयी दिल्ली - ११० ०१५

गुंजन (त्रै.) - मोहन सिंह रावत, रोहिला लॉज परिसर, तल्लीताल, नैनीताल - २६३ ००२

तटस्थ (त्रै.) - डॉ. कृष्ण बिहारी सहल, विवेकानंद विला, पुलिस लाइन्स के पीछे सीकर - ३३२ ००१

तेवर (त्रै.) - कमलनयन पांडेय, १५८७/४, उदय प्रताप कॉलोनी, बढ़ैयावीर, सिविल लाइन्स, सुलतानपुर - २२८ ००१

दस्तक (त्रै.) - राघव आलोक, "साराजहां", मकदमपुर, जमशेदपुर - ८३१ ००२

दीर्घाबोध (त्रै.) - कमल सदाना, अस्पताल चौक, ईसागढ़ रोड, अशोक नगर ४७३ ३३१ (म. प्र.)

दीर्घा (त्रै.) - डॉ. विनय, २५ बैंग्लो रोड, कमला नगर, दिल्ली ११० ००७

निमित्त (त्रै.) - श्याम सुंदर निगम, १४१५, 'पूर्णिमा', रतनलाल नगर, कानपुर २०८ ०२२

निष्कर्ष (त्रै.) - गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, ५९ खैराबाद, दरियापुर रोड, सुलतानपुर - २२८ ००१

परिधि के बाहर (त्रै.) - नरेंद्र प्रसाद 'नवीन,' पीयूष प्रकाशन, महेंद्रू, पटना - ८०० ००६

पश्यंती (त्रै.) - प्रणव कुमार बंद्योपाध्याय, बी-१/१०४ जनकपुरी, नयी दिल्ली - ११० ०५८

प्रयास (त्रै.) - शंकर प्रसाद करगेती, 'संवेदना', एफ-२३, नयी कॉलोनी, कासिमपुर, अलीगढ़ - २०२ १२७

प्रेरणा (त्रै.) - अरुण तिवारी, सी-१६०, शाहपुरा, भोपाल - ४६२ ०१६

पुरुष (त्रै.) - विजयकांत, गोशाला रोड, मुज़फ्फरपुर (बिहार)

भाषा सेतु (त्रै.) - डॉ. अंबाशंकर नागर, हिंदी साहित्य परिषद, २ अमर आलोक अपार्टमेंट, बालवाटिका, मणिनगर, अहमदाबाद - ३८० ००८

मसि कागद (त्रै.) - डॉ. श्याम सखा 'श्याम,' १२ विकास नगर, रोहतक १२४ ००१

मुहिम (त्रै.) - बच्चा यादव / रणविजय सिंह सत्यकेतु, रचनाकार प्रकाशन, गुरुद्वारा मार्ग, पूर्णिया - ८५४ ३०१

युग साहित्य मानस (त्रै.) - सी. जय शंकर बाबु, १८/७९५/एफ/८-ए, तिलक नगर, गुंतकल - ५१५ ८०१ (आं. प्र.)

युगीन काव्या (त्रै.) - हस्तीमल 'हस्ती,' २८ कालिका निवास, नेहरू रोड, सांताक्रुज, मुंबई - ४०० ०५५

वर्तमान जनगाथा (त्रै.) - बलराम अग्रवाल, डी-२२ शांतिपथ, पत्रकार कॉलोनी, तिलक नगर, जयपुर - ३०२ ००४

वर्तमान संदर्भ (त्रै.) - संगीता आनंद, चुरू कोठी हाता, मोराबादी, रांची ८३४ ००८

शब्द-कारखाना (त्रै.) - रमेश नीलकमल, अक्षरविहार, अवंतिका मार्ग, जमालपुर - ८११ २१४ (बिहार)

संबोधन (त्रै.) - कमर मेवाड़ी, चांदपोल, कांकरोली - ३१३ ३२४
समकालीन सृजन (त्रै.) - शंभुनाथ, २० बालमुकुंद मक्कर रोड, कलकत्ता - ७०० ००७
साखी (त्रै.) - केदारनाथ सिंह, प्रेमचंद साहित्य संस्थान, प्रेमचंद पार्क, बेतिया हाता, गोरखपुर - २७३ ००१
सदभावना दर्पण (त्रै.) - गिरीश पंकज, जी-५० नया पंचशील नगर, रायपुर - ४९२ ००१
समझ (त्रै.) - डॉ. सोहन शर्मा, ए/१२ दीपसागर, पंतकी बाग के पास, अंधेरी (पू.), मुंबई - ४०० ०६९
सार्थक (त्रै.) - मधुकर गौड़, १/ए/३०३ ब्ल्यू ओसन, ब्ल्यू एंपायर कॉम्पलेक्स, महावीर नगर, कांदिवली (प.), मुंबई - ४०० ०६७
संयोग साहित्य (त्रै.) - मुरलीधर पांडेय, २०४/'ए' चिंतामणि अपार्टमेंट, आर.एन.पी. पार्क, काशी विश्वनाथ नगर, भयंदर, मुंबई - ४०११०५
स्वातिपथ (त्रै.) - कृष्ण 'मनु', साहित्यांजन, बी-३/३५, बालुडीह, मुनीडीह, धनबाद - ८२८ १२९
शब्द संसार (त्रै.) - संजय सिन्हा, पो. बॉक्स नं. १६४, आसनसोल ७१३३०१
शुरुआत (त्रै.) - वीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव, ३० आकाश गंगा परिसर, पुरानी बस्ती, मनेंद्रगढ़
शेष (त्रै.) - हसन जमाल, पन्ना निवास के पास, लोहार पुरा, जोधपुर -३४२ ००२
हिंदुस्तानी ज़बान (त्रै.) - डॉ. सुशीला गुप्ता, महात्मा गांधी बिल्डिंग, ७ नेताजी सुभाष रोड, मुंबई - ४०० ००२
अविरल मंथन (छ.) - राजेंद्र वर्मा, ३/२९ विकास नगर, लखनऊ - २२६ ०२०
अब (अ.) - शंकर / अभय / नर्मदेश्वर, ७४ इ, गोरक्षिणी पथ, ससाराम - ८२१ ११५
उत्तरार्द्ध (अ.) - विजयलक्ष्मी, ३८८ राधिका बिहार, मथुरा - २८१ ००४
कला (अ.) - कलाधर, नया टोला, लाइन बाजार, पूर्णियां - ८५४ ३०१
पुनः (अ.) - कृष्णानंद कृष्ण, दक्षिणी अशोक नगर, पथ सं-८बी, कंकड़ बाग, पटना - ८०० ०२०
सरोकार (अ.) - सदानंद सुमन, रानीगंज, मेरीगंज, अररिया - ८५४ ३३४
समीचीन (अ.) - डॉ. देवेश ठाकुर, बी-२३ हिमाचल सोसायटी, असल्फा, घाटकोपर (पू.), मुंबई ४०० ०८४
सम्यक (अ.) - मदन मोहन उपेंद्र, ए-१० शांतिनगर (संजय नगर), मथुरा २८१ ००१

'कथाबिंब' यहां भी उपलब्ध है :

- **पीपुल्स बुक हाउस**, मेहर हाउस, १५ कावसजी पटेल स्ट्रीट, मुंबई - ४०० ००१. फोन : २८७ ३७३८
- **व्यवस्थापक बुक कॉर्नर**, श्रीराम सेंटर, सफ़दर हाशमी मार्ग, नयी दिल्ली ११० ००१.
- **डॉ. देवकीनंदन**, ए-१/३०४, हृषीकेश, स्वामी समर्थ नगर, लोखंडवाला कॉम्प्लेक्स, अंधेरी (प.), मुंबई - ४०००५३. फोन : ६३२ ०४२५
- **श्री वीरेंद्र सिंह चंदेल**, १३६ तलैय्या लेन, परेड ग्राउन्डस, फतेहगढ़ - २०९६०१
- **श्री रविशंकर खरे**, हरिहर निवास, माधोपुर, गोरखपुर - २७३००१.
- **श्री राजेंद्र आहुति**, ए १३/६८, भगतपुरी, वाराणसी-२२१००१.
- **स ब द**, १७१ कर्नलगंज, स्वराज भवन के सामने, इलाहाबाद - २११००२.
- **डॉ. गिरीश चंद श्रीवास्तव**, ५९ खैराबाद, दरियापुर रोड, सुलतानपुर-२२८००१. फोन : २३२८५
- **श्री अनिल अग्रवाल**, परिवेश लघु पत्रिका मंडप, पुराना गंज, रामपुर-२४४९०१. फोन : ३२७३६१
- **श्री योगेंद्र दवे**, ब्रम्हपुरी, पीपलिया, जोधपुर-३४२००१
- **श्री राही सहयोग संस्थान**, शकुंतला भवन, बालाजी के मंदिर के पास, वनस्थली-३०४ ०२२ (राज.). फोन : २८३६७
- **श्री भुवनेश कुमार**, सं : कविता, २२० सेक्टर-१६, फरीदाबाद - १२१००२
- **श्री गोविंद अक्षय**, अक्षय फीचर सर्विसेस, १३-६-४११/२, रामसिंहपुरा, कारवान, हैदराबाद - ५०००६७.
- **श्री नूर मुहम्मद 'नूर'**, सी. सी. एम. क्लैम्स लॉ, दक्षिण पूर्व रेल्वे, ३, कोयला घाट स्ट्रीट, कलकत्ता - ७००००१
- **श्री देवेंद्र सिंह**, देवगिरी, आदमपुर घाट मोड़, भागलपुर - ८१२००१.
- **व्यवस्थापक**, सर्वोदय बुक स्टाल, रेल्वे स्टेशन, भागलपुर - ८१२००१.
- **श्री कलाधर**, आदर्श नगर, नया टोला, पूर्णियां - ८५४३०१.
- **मेसर्स लाल मणि साह**, आर.एन.साव. चौक, पूर्णिया - ८५४३०१.
- **श्री महेंद्र नारायण पंकज**, राजकीय प्राथमिक विद्यालय, पैकपार, मेरीगंज, अररिया - ८५४३३४.
- **श्री बसंत कुमार**, दीर्घतपा, वार्ड-६, अररिया -८५४३३४.
- **सुश्री मेनका मल्लिक**, चतुरंग प्रकाशन, न्यू कॉलोनी, उलाव, बेगूसराय - ८५११३४
- **श्री रणजीत बिहारी**, पत्रिका मंडप, पंचवटी, चीरागोड़ा, धनबाद - ८२६००१.
- **श्री देवेंद्र होलकर**, १८८ सुदामा नगर, अन्नपूर्णा सेक्टर, इंदौर - ४५२००९. फोन : ४८४ ४५२
- **श्री मिथिलेश 'आदित्य'**, पोस्ट बॉक्स-१, मेनरोड, जोगबनी - ८५४३२८

: प्राप्ति - स्वीकार :

कटे हुए पंख (उपन्यासिका) : शिवकुमार सरोज, जीवन प्रभात प्रकाशन, मुंबई ४०० ०६३, मू. ६५ रु.

असलियत (उपन्यास) : डॉ. परमलाल गुप्त, पीयूष प्रकाशन, नमस्कार, शारदा नगर,
बस स्टैंड के पीछे, सतना - ४८५ ००१. मू. ६० रु.

और ज़ंग अभी ज़ारी है (कहानी संग्रह) : उषा भटनागर, आधुनिक प्रकाशन, ४-बी/६ गुरूद्वारा मोहल्ला, मौजपुर (घोंडा),
दिल्ली ११० ०५५ : मू. १५० रु.

बुलबुल तुम उड़ती क्यों नहीं (क. सं.) : प्रतिभू बनर्जी, श्यामला प्रकाशन, पेंड्रा, बिलासपुर (छ. ग.) मू. ७० रु.

मार्क्स का जूता (क. सं.) : डॉ. अंजनी कुमार दुबे 'भावुक', सरस्वती प्रकाशन, ७/२१९ आवास विकास,
झूंसी, इलाहाबाद २११ ०१९. मू. १०० रु.

पथ के गवाह (क. सं.) : भगीरथ शुक्ल, शिव प्रकाशन, शिव पार्वती निवास, बोईसर, ठाणे ४०१ ५०१. मू. १०० रु.

जेता (काव्य-नाटक) : क्रांति कनाटे, पश्चिमांचल प्रकाशन, २६ मनसुखनगर सोसायटी, नया वाड्ज, अहमदाबाद ३८० ०१३. मू. ५० रु.

जीने की दिशा (कविता) : मौसमी मुखर्जी, मुखर्जी प्रकाशन, वार्ड १०, मधेपुरा ८५२ ११३. मू. १०० रु.

यादें (कविता) : स्व. अजय कुमार मिश्र, अरिंदम प्रकाशन, ११-५-४ रोड नं. २, काकी नाड़ा, उत्तर २४ परगना ७४३ १२६. मू.२० रु.

भावनात्मक एकता (दोहा-सतसई) : ए. बी. सिंह, रेखा प्रकाशन, ए-१, कैलाश नगर, निंबोहड़ा ३१२ ६१७ (राज.). मू. १९५ रु.

तपिश (ग़ज़ल-संग्रह) : अनिरुद्ध सिन्हा, प्रतिमा प्रकाशन, गुलज़ार पोखर, मुंगेर, ८११ २०१. मू. ८० रु.

वजूद का सहरा (ग़ज़ल-संग्रह) : मरयम ग़ज़ाला, मासुम प्रकाशन, १०३ बी, गोपाल अपार्टमेंट,
आनंद कोली वाड़ा, मुंब्रा ४०० ६१२, मू. ८० रु.

एमिली डिकिंसन की कविताएं (अनुवाद) : क्रांति कनाटे, पश्चिमांचल प्रकाशन, २६ मनसुखनगर सोसायटी,
नया वाड्ज, अहमदाबाद ३८० ०१३. मू. ४७ रु.

With Best Compliments From

M/S JYOTI STEEL INDUSTRIES

13 Mira Co.op. Ind. Est. Ltd.,
Opp. Amar Palace Hotel, Mira, Thane 401 104

With Best Compliments From

KUMAR METAL INDUSTRIES

101, Kakad Bhavan, 30th Road,
Opp. Gaiety-Galaxy Cinema, Bandra (W), Mumbai 400 050

Tel. : 2651 8383

With Best Compliments From

INFOTECH PVT. LTD.

53/2476, Radheshyam, Gandhi Nagar,
Bandra (E), Mumbai 400 051

कुछ कही, कुछ अनकही

(. . . पृष्ठ ४ से आगे)

मीडिया आज सबसे बड़े खलनायक के रूप में उभर कर आया है - ख़ासकर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया. आपसी स्पर्धा के कारण हर समाचार चैनल दौड़ में आगे रहना चाहती है - ज़ी-न्यूज़, आज तक, स्टार-समाचार - चाहे रेल दुर्घटना हो, संसद या रघुनाथ मंदिर पर आत्मघाती हमला - कौन 'सबसे तेज' है या 'सबसे पहले'. संवाददाता तुरंत दावा करने लगते हैं कि ये एक्सक्लूसिव चित्र उन्हीं की चैनल पर दिखाये जा रहे हैं. और फिर अर्थहीन प्रश्न - 'वहां का माहौल कैसा है ?' 'कितने आतंकवादी अंदर हैं ?' 'कमांडो ऑपरेशन कब तक शुरू होगा ?' 'रेल दुर्घटना के बारे में आपका क्या अनुमान है ?' - 'जानकारी के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद, आप वहीं रहिए, हम आपसे निरंतर संपर्क बनाये रहेंगे.' टेलीफोन वार्तालाप के साथ वही-वही फूटैज़ बार-बार दिखाया जाता है. मीडिया जिसे समाज के पहरुये का काम करना चाहिए, अपनी विश्वसनीयता खोता जा रहा है.

बहुत से लोगों के लिए गुजरात का चुनाव जीने-मरने का प्रश्न बन गया था. किसी भी स्थिति में भाजपा को नहीं जीतना चाहिए. दिलीप सरदेसाई और प्रभु चावला ने जैसे अपना सब कुछ दांव पर लगा रखा था. चुनाव के ठीक ६ दिन पहले, ६ दिसंबर को हर एक घंटे, आज तक चैनल पर बाबरी मस्जिद के टूटने के दृश्य निरंतर दिखाये जा रहे थे. 'एक्ज़िट पोल' के नतीजे स्पष्टतः कॉन्ग्रेस की हार की ओर संकेत कर रहे थे फिर भी कहा यह जा रहा था कि भाजपा कम सीटों से जीतने वाली है. चुनाव के अंतिम परिणामों की घोषणा करते समय दिलीप सरदेसाई के चेहरे पर सफ़ेदी पुती हुई थी जैसे कि उसकी व्यक्तिगत हार हुई हो ! इससे पूर्व भी जब इंग्लैंड में क्रिकेट में भारत की जीत हुई थी जिसे मोहम्मद कैफ़ और ज़हीर ख़ान ने संभव कर दिखाया था तो पूरे देश में सिर्फ़ दिलीप सरदेसाई के ज़ेहन में आया कि दोनों खिलाड़ी मुसलमान हैं, जबकि सारा हिंदुस्तान इसे भारतवासियों की जीत के रूप में देख रहा था.

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की कोई एकॉउन्टेबिलिटी शेष नहीं है. क्योंकि हर दूसरे पल ख़बर बासी हो जाती है. समाचार-पत्र तो फिर भी दूसरे या तीसरे पृष्ठ पर कभी-कभी खेद प्रगट कर देते हैं. टी. वी. पर कभी किसी समाचार का खंडन होते सुना है ?

●

मैं अक्सर सोचता हूं कि पूरे विश्व में अकेला भारतवर्ष ही है जिसके पिछले पांच-पांच प्रधानमंत्री अभी जीवित हैं -सर्वश्री विश्व नाथ प्रताप सिंह, चंद्रशेखर, नरसिंहम्हा राव, देवे गौड़ा और गुजराल जी. अपने कार्यकाल में देश की भीषण समस्याओं से पांचों अवश्य दो-चार हुए होंगे. यह ठीक है कि सभी ने गोपनीयता की शपथ ले रखी है. 'मोर्चा' बनाने और तोड़ने में अपनी शक्ति और श्रम का अपवय न करते हुए वे चाहे तो एकजुट होकर सरकार को अनेक मसलों पर परामर्श दे सकते हैं. जितनी राशि देश उनकी सुरक्षा पर प्रतिवर्ष लगाता है उसके बदले में कुछ तो उसे मिलना चाहिए.

●

एक बार फिर सभी पाठकों, शुभचिंतकों से निवेदन कि कृपया अपने संपर्क का उपयोग करते हुए पत्रिका को विज्ञापन दिलवायें. विज्ञापन की दरों के लिए हमें लिखें. साथ ही कुछ नये आजीवन / त्रैवार्षिक/ वार्षिक सदस्य भी बनवायें. आजीवन सदस्यों की संख्या ७० पार कर चुकी है. आप सभी के सहयोग से, आसानी से यह १०० तक पहुंच सकती है.

अरविंद

'रेखा सक्सेना स्मृति पुरस्कार'

प्रिय पाठक आपको मालूम ही है कि अपनी कहानीकारा पत्नी रेखा सक्सेना की स्मृति में श्री उमेश चंद्र सक्सेना [२०१/बी, पायल, आशा नगर, कांदिवली (पू.), मुंबई ४००१०१] ने प्रतिवर्ष 'कथाबिंब' को ५००० रु. देना सुनिश्चित किया है. इस राशि का उपयोग पूरे वर्ष में प्रकाशित आठ कहानियों के कथाकारों को पुरस्कृत करने में किया जाता है. पाठकों से अनुरोध है कि अक्तूबर-दिसंबर २००२ अंक हाथ में आने के बाद शीघ्र से शीघ्र कहानियों की श्रेष्ठता का क्रम प्रकाशित अभिमत-प्रपत्र में चिन्हित करके हमें भेजें. हम चाहते हैं कि अधिक से अधिक पाठक इस जनतांत्रिक चयन में भाग लें. इस हेतु वर्ष के सभी प्रकाशित अंक आप अपने पास सुरक्षित रखें और अपना निष्पक्ष निर्णय अभिमत-पत्र के माध्यम से व्यक्त करें. हम आपके विशेष आभारी होंगे.

Best Wishes From

M/s. R. H. Kamath

Raju Indl. Estate,
Penkar Pada Road,
Mira, Thane 401104

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या : ३५७६४/७९

REŠIKON®

CONSTRUCTION CHEMICAL SYSTEMS

POLYMER ADMIXTURE

BETONDUR	Admixture for high performance polymeric mortar and concrete specially those exposed to marine environment.
RESIKON S4	Admixture for polymeric cementitious mortar and concrete.
RESIKON 400	Admixture for high performance polymeric cementitious mortar and concrete.
RESIKON 800	Admixture for flexible polymeric cementitious coating and mortar.

CONCRETE ADMIXTURE

RESIKON SP 110 -	Superplasticiser.
RESIKON SP 120 M-	Superplasticiser.
RESIKON SP 130 -	Water reducer.

METAL TREATMENT CHEMICALS

AMCOR RR	Rust remover and phosphatiser.
RESIKON RSK	Rust converter.
AMCOR PR	Primer cum protective coating for steel and rust inhibitor.
RESIKON COASTAL	Protective coating for steel.

WATER PROOFING SYSTEM

RESIPOLY PROOF	Water proofing system - WPS-1
RESIKON 400/800	Water proofing system - WPS-2

ADDITIVES FOR CEMENT COATING & CEMENT PAINT

RESIKON SUPERAID	Cement coating additive for improved performance & UV resistant.
RESIKON CEM-SUPERAID	Cement paint additive for improved performance.

ACCELERATOR

RESIKON 29	Accelerator for concrete.

SPECIALITY CHEMICALS

ANUVISOL	Cleaning agent for stone surfaces.

ANUVI

Manufactured & Marketed by :

ANUVI CHEMICALS PRIVATE LIMITED

G-212, Godavari, Laxmi Industrial Premises, Pokharan Road No1, Vartak Nagar, Thane - 400 606, Maharashtra, India.

Tel. : 022-2539 2219 ● Fax : 022-2539 2461

E-mail : anuvi@vsnl.com ● resikonchem@rediffmail.com

मंजुश्री द्वारा संपादित व **आर्ट होम**, शांताराम साळुंके मार्ग, घोड़पदेव, मुंबई - ४०० ०३३ में मुद्रित.

टाइप सेटर्स : **वन-अप प्रिंटर्स**, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई ४०० ०७१. फो. : २५५५ २३४८ व २५५६ ६२८४.